

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182001

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H 82

Accession No. H 3105

Author A 81 N

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

नये रंग-स्रकांकी

[सात नये एकांकियों का संग्रह]

सम्पादक
उपेन्द्रनाथ अग्रक

नीलाभ प्रकाशन
इलाहाबाद-१

प्रथम संस्करण १९५६

द्वितीय संस्करण १९५७

तृतीय संस्करण १९५९

Checked 1965

मूल्य: तीन रुपये पच्चीस नये पैसे

Checked 1969

प्रकाशक

नीलाभ प्रकाशन, ५-खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद-१

मुद्रक

प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स, ३-बलाइव रोड, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

‘नये रंग-एकांकी’ पहले-पहल १९५६ में छपा था । न केवल छः महीने में इसका संस्करण समाप्त हो गया, वरन् बम्बई हिन्दी बोर्ड ने अपने पाठ्यक्रम में स्वीकार कर, इसे समाहित किया ।

यह नया संस्करण न केवल अश्व जी ने संशोधित कर दिया है, वरन् छपा भी पहले से अच्छा है । आशा है शिक्षण-संस्थाओं में और एमेचर रंगमंच पर यह समान-रूप से लोकप्रिय होगा ।

प्रकाशक

अनुक्रम

रंग-एकांकी की माँग : अशक	६
सीमा-रेखा : विष्णु प्रभाकर	१६
‘नवजोती’ की नयी हीरोइन : सत्येन्द्र शरत	३६
सत्य किरण : कृष्णकिशोर श्रीवास्तव	६५
बन्दी : जगदीशचन्द्र माथुर	८६
आवाज़ का नीलाम : धर्मवीर भारती	१२७
बाहर का आदमी : लक्ष्मीनारायण लाल	१४१
<u>घपले</u> : उपेन्द्रनाथ अशक	१६५

नये रंग-रुकांकी

रंग-नाटक की माँग



उपेन्द्रनाथ अश्क

किसी नाटक के लिए जब हम 'रंग-नाटक' की संज्ञा देते हैं तो हम यह मानकर चलते हैं कि नाटक के कई प्रकार हैं, जिनमें रंग-नाटक एक है और शेष इससे भिन्न हैं। प्रकट है कि यदि यह अन्य प्रकार के नाटकों से भिन्न है तो इसकी माँग भी उनसे भिन्न होगी।

प्रचलित नाटकों पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो मुख्य रूप से हमें चार तरह के नाटक देखने को मिलते हैं—रंग-नाटक, ध्वनि-नाटक, चित्र-नाटक और ऐसे नाटक जो केवल पाठकों के मनोरंजनार्थ लिखे जाते हैं। इनमें से हर नाटक की माँग, याने उसकी आवश्यकताएँ, भिन्न हैं। ये आवश्यकताएँ इन नाटकों के माध्यम (Medium) और इनकी प्रेषणीयता (Appeal) की अनुवर्ती हैं। इससे पहले कि हम रंग-नाटक की आवश्यकताओं को जानें, हमें संक्षेप में अन्य प्रकार के नाटकों, उनके माध्यम, उनकी अपील और उनकी आवश्यकताओं को जान लेना चाहिए।

ध्वनि-नाटक का माध्यम रेडियो स्टेशन के स्टूडियो में रखा हुआ माइक्रोफोन है और उसकी अपील उन सहस्रों श्रोताओं के लिए है

जो अपने-अपने घरों में रेडियो-सेट पर स्टूडियो से प्रसारित होने वाले नाटक को सुनते हैं ।

इन्हीं दो सीमाओं के कारण एक ओर जहाँ ध्वनि-नाटककार के हाथ बँध जाते हैं—वह अपने पात्रों की भंगिमाओं और उनके अभिनय को नहीं दिखा सकता—वहाँ वह अपनी कल्पना को उन्मुक्त छोड़ सकता है और वर्षों और सदियों की कहानी को बड़े इतमीनान से १५, २०, ३० मिनट की अवधि में समोकर अपने श्रोताओं को रेडियो-सेट के साथ बाँधे रख सकता है । ‘ध्वनि-नाटक’ की माँग है चुस्त, चुटीले, प्रभावशाली काव्यमय संवाद, जिन्हें अभिनेता बिना याद किये, पाण्डुलिपि की सहायता से अपनी आवाज़ के उतार-चढ़ाव से प्रसारित कर सके । ये संवाद कितने भी लम्बे क्यों न हों, यदि अभिनेता कुशल है और अपनी आवाज़ पर उसे पूरा अधिकार प्राप्त है तो वह श्रोताओं को कभी न ऊबने देगा ।

ध्वनि-नाटक—में संकलन-त्रय—अर्थात् समय, स्थान और घटनाओं की इकाई की, जो रंग-नाटक की प्रमुख माँग है, वैसी आवश्यकता नहीं है । एक कमरा, एक घर, मैदान, बाग-बगीचे, चलती हुई गाड़ी, बहता हुआ दरिया, जलयान या वायुयान—सब का आभास और उनमें बैठे-तैरते अथवा यात्रा करते हुए मुसाफ़ि़रों के संवाद ध्वनि-नाटक का अंग बन सकते हैं । नाटककार चाहे तो उद्घोषक के रूप में स्वयं भी कहानी सुना सकता है ।

चित्र नाटक—अर्थात् फ़िल्म-नाटक ध्वनि-नाटक के निकट है, लेकिन माध्यम और प्रेषणीयता के अन्तर के कारण उसकी आवाज़ थोड़ी भिन्न हो जाती है । चित्र-नाटक में माइक के साथ-साथ कैमरा भी योग देता है और जहाँ ध्वनि-नाटक केवल सुना जा सकता है, वहाँ चित्र-नाटक देखा भी जा सकता है । चूँकि चित्र-नाटक देखा जाता है, इसलिए उसके अभिनेता नाटक की पाण्डुलिपि हाथ में लेकर नाटक

नहीं कर सकते । अपना पार्ट, छोटा या बड़ा, उन्हें याद करना और पूरे अभिनय के साथ माइक और कैमरे के सामने अदा करना पड़ता है । लेकिन एक सुविधा ध्वनि-नाटक और चित्र-नाटक दोनों के अभिनेताओं को समानरूप से प्राप्त है । नाटक खेलते समय—उनके देखने अथवा सुनने वाले उसके सामने नहीं होते—उनके सामने होते हैं निर्जीव माइक्रोफोन अथवा अपने काम में रत फोटोग्राफर या दूसरे कर्मचारी ! इससे जहाँ एक ओर उनका काम बड़ा आसान हो जाता है, वहाँ दर्शकों की अनुपस्थिति में, उनकी प्रशंसा से प्रेरणा पाये बिना ही भावनाओं को अपनी आकृति पर चित्रित करना दुष्कार भी होता है । लेकिन ध्वनि-नाटक की तरह सिने-नाटककार का काम आसान भी है । सिनेमा के पर्दे पर दृश्य पर दृश्य बदलते चले जाते हैं । सिने-अभिनेताओं को अपना पार्ट यद्यपि याद करना पड़ता है, पर अक्सर वह एक शॉट में एक-दो पंक्तियों से ज्यादा का नहीं होता । चित्र-नाटक लिखने वाला छोटे-से-छोटा दृश्य बड़ी आसानी से रख सकता है । हर तरह का दृश्य उपस्थित कर सकता है और कहानी का क्रम अटकता हो, टूटता हो, तो स्वयं दृश्यों की पृष्ठभूमि में माइक की सहायता से सिनेमा-हाल में बैठे हुए दर्शकों को कहानी सुना भी सकता है ।

पाठ्य-नाटक—पाठकों के लिए नाटक लिखने वाले का काम इन दोनों से आसान है । पाठ्य-नाटक की माँग है केवल मनोरंजन अथवा प्रचार । वह कैसे भी नाटक लिखे, ध्वनि, चित्र अथवा रंग नाटक के सम्मिश्रण से चाहे जैसा मसौदा तैयार करे, जरूरत इस बात की है कि उसके पाठक ऊँचे नहीं और उसका मसौदा पाठकों की कल्पना को अपने साथ उड़ाता हुआ ले चले और जो विचार, गहन दर्शन या समस्याएँ वह पाठकों के सम्मुख रखना चाहता है, मनोरंजकता का दामन न छोड़ते हुए, रख दे । वह छोटे-से-छोटा नाटक लिख सकता है, जो नाटक न होकर सम्वाद मात्र हो और उसी के माध्यम से बारीक-से बारीक बात

अपने पाठकों तक पहुँचा सकता है। वह कहानी और सम्वाद के सम्मिश्रण से ऐसा नाटक तैयार कर सकता है जो न कहानी हो, न नाटक, बल्कि दोनों का मिला-जुला रूप हो। वह चाहे तो एक ही अंग एक घंटे का लिख दे या एक अंक में १५ दृश्य दे दे या पाँच अंक लिखे और एक-एक में १५-१५ दृश्य दे दे। वह जानता है कि उसका नाटक न खेला जायगा, न प्रसारित होगा, बल्कि उसे पाठक पढ़ेगा और उसी का ध्यान वह रखता है।

रंग-नाटक—की आवश्यकताएँ लेकिन इन सबसे भिन्न हैं। रंग-नाटककार जो लिखता है, इस दृष्टि से लिखता है कि वह रंगमंच पर खेला जायगा। न केवल यह, बल्कि उसके लिखे नाटक को देखने वाले उसके सामने—यदि वह निर्देशक अथवा प्रोड्यूसर भी है तो—उपस्थित होंगे। और यों उसके हाथ बँध जाते हैं। उसे जो कहानी अपने दर्शकों के सामने प्रस्तुत करनी होती है, अपने पात्रों के सम्वादों और उनकी भाव-भंगिमाओं के माध्यम ही से प्रस्तुत करनी होती है। ध्वनि-नाटककार अथवा सिनारिस्ट की तरह वह दृश्य-पर-दृश्य नहीं बदल सकता। उड़ते या बहते वायुयानों अथवा जलयानों का आभास नहीं दे सकता, चलती बसों, गाड़ियों और उन पर कूदते-फाँदते अभिनेताओं को नहीं दिखा सकता। न बहुत लम्बे, न बहुत छोटे दृश्य दिखा सकता है। और न कहानी का क्रम टूटने पर उद्घोषक के रूप में स्वयं बीच में कूद सकता है।

फिर अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी इन्हीं दो सीमाओं में बँधकर उसे चलना होता है। अपने पात्रों के सम्वादों, भंगिमाओं और अभिनय की सहायता ही से उसे उनका चरित्र-चित्रण करना होता है।

रंग-नाटक के अभिनेताओं का काम उससे भी मुश्किल है। ध्वनि-नाटक के अभिनेताओं के हाथ में नाटक की पाण्डुलिपि रहती है और वे फ़र-फ़र उसमें से देखते हुए अपनी आवाज़ों के उतार-चढ़ाव से मनचाहा प्रभाव पैदा करते चले जाते हैं। प्रकट है कि सम्वाद भूलने

की सम्भावना यहाँ कम रहती है। इसी तरह सिने-अभिनेता यदि सम्वाद भूल जाते हैं तो उतना दृश्य फिर से ले लिया जाता है। पर रंग-नाटक के अभिनेता को अपना पूरे-का-पूरा पार्ट कंठस्थ करना होता है, भूल जाना उसके लिए मुसीबत हो जाता है।

दर्शकों का सामने बैठे होना, जहाँ सफलता पर अभिनेता का दिल बड़ा देता है, वहाँ असफलता पर नाटक को मटियामेट भी कर देता है।

उसके नाटक को देखने वाले सामने बैठे होंगे, यह ध्यान रंग-नाटककार के दिमाग में उसके अनजाने भी बैठा रहता है और वह कोई ऐसा दृश्य नहीं रख पाता जो उसके दर्शकों को उबा दे या कहानी की गति को मन्द कर दे। वह दर्शकों की कल्पना को नहीं, उनकी आँखों और कानों को अपील करता है और अपनी कला से यथार्थता का भ्रम कायम कर देता है। इसी कारण सफल रंग-नाटक में समय, स्थान और अभिनय की इकाई विद्यमान रहती है।

पुराने नाटक लम्बे भी होते थे और उनके एक-एक अंक में कई-कई दृश्य भी होते थे और इसीलिए उनमें संकलन-त्रय का ध्यान नहीं रखा जाता था। पर आज के नाटक दर्शकों की कल्पना पर निर्भर नहीं करते और यथार्थता का पूरा भ्रम मंच पर उपस्थित कर देते हैं इसलिए आज के रंग-नाटक की आवश्यकताएँ भी बदल गयी हैं। यथार्थ सेटिंग, त्वरित गति से चलने वाली, समय की इकाई में बँधी कहानी और यथार्थ अभिनय ! इसी कारण नाटक की अवधि भी चार-पाँच घंटे से घटकर दो-ढाई घंटे हो गयी है।

आज का रंग-नाटककार आधुनिक साधनों से काम ले सकता है। कुछ सम्वाद माइक की सहायता से बोले जाते हैं और कहानी का कुछ भाग भी माइक की सहायता से बताया जाने लगा है, पर रंग-नाटक की कठिनाई यह है कि जिस प्रकार रंग-नाटक का अभिनेता अपना सम्वाद

कहीं भूल जाय तो कयामत आ सकती है, इसी तरह अगर माइक फेल हो जाय तो सारा नाटक चौपट हो सकता है। फिर जहाँ ध्वनि-नाटक में उद्घोषक की बात सुनने के लिए रेडियो-सेट के पास बैठे श्रोता उत्सुक रहते हैं, वहाँ अक्सर नाटक के शुरू में माइक की सहायता से कही गयी बात दर्शक नहीं सुनते। सफल रंग-नाटककार इसीलिए माइक का सहारा नहीं लेता।

जिस प्रकार रेडियो-नाटक तथा फ़िल्म-नाटक के कई भेद हैं, वैसे ही रंग-नाटक के कई भेद हैं। रेडियो-नाटक और रेडियो-रूपक की आवश्यकताएँ भिन्न हैं—रेडियो-नाटक गठन माँगता है, अभिनय की गुंजाइश माँगता है, लेकिन रूपक में गठन और अभिनय के बिना भी काम चल जाता है। कुछ आवाज़ें ही सारी कहानी कह देती हैं।

रंग नाटक के कुछ प्रकार ये हैं :

१. पुरानी शैली के नाटक—इनमें जैसा की पहले कहा गया है, संकलन-त्रय की आवश्यकता नहीं। यथार्थ सेटकी भी ज़रूरत नहीं, पदों से यहाँ काम लिया जा सकता है।

२. आधुनिक नाटक—इनमें यथार्थ सेट ज़रूरी है। सरगोशियों को पिछले बेंचों पर बैठे श्रोताओं को सुनाने के लिए छिपे हुए माइकों का प्रयोग किया जाता है। पुरानी कहानी बताने के लिए, माइक और छाया-चित्रों का सहारा लिया जा सकता है।

३. स्वच्छन्द नाटक—लोक-नाटकों की शैली पर यदि ऐसे नाटक लिखे जायें जो खुले में, बिना ज़यादा साज़-सामान के खेले जा सकें तो उन्हें नौटंकी, रहस और रास लीला की शैली अपनानी होगी।

४. लेकिन आधुनिक विज्ञान ने कई ऐसी बातें रंग-नाटककार के लिए सुलभ बना दी हैं कि वह एक सेट में सारा नाटक दिखाने के बदले तीन-चार सेटों में दिखा सकता है। उसके लिए घूमने वाले रंग-मंच से काम लिया जाता है, जिसपर पहले से सेट तैयार रहते हैं।

लेकिन इन सब आधुनिक साधनों के बावजूद यह बात वहीं-की-वहीं रहती है कि जहाँ रंग-नाटक को बिना कुछ जयादा परिवर्तन किये, रेडियो पर प्रसारित अथवा रजत पट पर चित्रित किया जा सकता है, वहाँ ध्वनि-नाटक या चित्र-नाटक वैसे ही मंच पर प्रस्तुत नहीं हो सकता। शा, कॉफ़ मैन, प्रीस्टले, ओ-नील तथा कई दूसरे नाटककारों की कृतियों को सफलता से, बिना अधिक परिवर्तन के, चित्र-पट ने अपनाया है, पर किसी फ़िल्म अथवा ध्वनि-नाटक को रंगमंच पर खेला नहीं गया। जब-जब मुख्य रूप से ध्वनि के लिए लिखे नाटकों को स्टेज करने की कोशिश की गयी, प्रयास प्रायः असफल रहे। वे लम्बे-लम्बे भावुकता भरे सम्वाद जो आकाशवाणी के श्रोताओं को बाँधे रख सकते हैं, मंच के दर्शकों को उबा देते हैं। मंच का दर्शक अपने सामने होने वाले सम्वादों में, तेज़ी, चुटीलापन और यथार्थ का भ्रम चाहता है और यही मुख्य रूप से रेडियो के लिए लिखा रूपक और नाटक, मंच पर असफल हो जाता है।

संक्षेप में यों कहा जाय तो ठीक होगा कि एक ही कहानी को जब रेडियो, सिनेमा और स्टेज के लिए लिखा जायगा तो जहाँ ध्वनि-नाटक और चित्र-नाटक में एक-जैसी घटनाओं को रखा जा सकेगा (क्योंकि माइक की तरह कैमरा भी जगह-जगह घूम सकता है।) वहाँ रंगमंच के लिए उस कहानी की अन्य घटनाओं को चुनना पड़ेगा। मंच अपनी सीमाओं से बँधा है। घटनाओं के पीछे-पीछे वह खेतों, बागों, मैदानों और बियाबानों में नहीं जा सकता, बल्कि उन सब की घटनाओं का ग्योरा उसी छोटे घेरे में प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए 'भाँसी की रानी' का कथानक लें तो जहाँ लड़ाई के दृश्यों का आभास रेडियो-नाटककार बड़ी आसानी से दे सकता है और सिनेनाटककार उन्हें आसानी से दिखा सकता है, वहाँ रंग-नाटककार

ऐसा नहीं कर सकता । उसे लड़ाई की घटना का व्योरा अपने पात्रों के सम्वादां की सहायता से देना होगा और इसीलिए कथानक में से ऐसे स्थल चुनने होंगे जो नाटकीय भी हों, अंतर अथवा बाह्य द्वन्द से भरपूर भी हों और रंग-मंच की उस परिधि में दिखाये भी जा सकें ।

इलाहाबाद
जुलाई १९५६

—उपेन्द्रनाथ अशक

सीमा-रेखा



विष्णु प्रभाकर

पात्र

लक्ष्मीचन्द्र

शरत्चन्द्र

सुभाषचन्द्र

कैप्टन विजय

तारा, अन्नपूर्णा, सविता, उमा

[दूसरे भाई, उपमंत्री शरतचन्द्र का ड्राइंग-रूम । आयु ५२ वर्ष । आधुनिक, पर सादगी की छाप । दीवार पर गांधी जी का तैल-चित्र है । दो-चार चित्र तिपाइयों पर भी हैं । पुस्तकें काफ़ी हैं । बीचोबीच एक सोफ़ा सेट है । उत्तर की ओर सामने दो द्वार हैं जो बाहर बरामदे में खुलते हैं । उसके पार सड़क है । पूर्व और पश्चिम के द्वार घर के अन्दर जाते हैं । सोफ़े व मेज़ों के आसपास कुर्सियाँ हैं । पर्दा उठने पर मंच खाली है । दो क्षण बाद शरतचन्द्र तेज़ी से आते हैं । बेहद परेशान हैं । कई क्षण बेचैनी से घूमते हैं फिर टेलीफ़ोन उठा लेते हैं । नम्बर मिलाते हैं ।]

शरत—हलो, मैं शरत बोल रहा हूँ । विजय का कुछ पता लगा... क्या ? क्या अभी तक नहीं लौटे ! भगड़ा बढ़ गया है । क्या ? गोली...गोली चलानी पड़ी । भीड़ बैंक के पास बेकाबू हो गयी थी । बैंक को लूटा ? नहीं...कहीं और लूटमार हुई ? नहीं... कोई घायल ? अभी कुछ पता नहीं । ओह, देखो अभी पता करके बताओ ! विजय आये तो मुझे टेलीफ़ोन करने को कहो...तुरन्त...समझे...मैं घर पर ही हूँ ।

[दूसरा नम्बर मिलाना चाहते हैं कि उनकी पत्नी अन्नपूर्णा
घबरायी हुई बाहर से आती है ।]

अन्नपूर्णा—आपने कुछ सुना है ?

शरत—हाँ, सुना है गोली चल गयी !

अन्नपूर्णा—अपने राज में भी गोली चलती है ?

शरत—अपना राज समझता कौन है ? जब तक अपना राज नहीं
समझेंगे तब तक गोली चलेगी ही । लेकिन खैर, तुम कहाँ
गयी थीं ?

अन्नपूर्णा—जीजी के पास ! रास्ते में सुना रामगंज में गोली चल गयी ।
बाजार बन्द हो रहे हैं । भय छाया हुआ है । लोग सरकार को
गालियाँ दे रहे हैं ।

शरत—(चौंका रखकर आगे आ जाते हैं ।) सरकार को गाली ही दी
जाती है । गोली चली तो गाली देते हैं । बैंक लुट जाता तब भी
गाली ही देते ।

अन्नपूर्णा—(एकदम) बैंक ! कौन-सा बैंक लुट रहा था ? बैंक से तो
कुछ भगड़ा नहीं था । कल आपके पीछे कुछ विद्यार्थी बस वालों
से भगड़ पड़े थे और आप जानते हैं कि विद्यार्थी.....

शरत—(एकदम) कि विद्यार्थी कानून की चिन्ता नहीं करते । बच्चे हैं,
अल्हड़ (तेज़ होकर) यह भी कोई बात है ? लोग पागल हो
जाते हैं । कानून अपने हाथ में ले लेते हैं । गोली चली है तो
ज़रूर कोई कारण रहा होगा । कुछ लोगों ने बैंक पर धावा बोला
होगा । पुलिस पर पत्थर फेंके होंगे ।

[सविता का प्रवेश—चौथे भाई, जन-नेता सुभाषचन्द्र की
पत्नी, आयु पैंतिस वर्ष]

सविता—फेंके होंगे तो इसका यह अर्थ नहीं कि पत्थर के जवाब में
गोली चला दी जाय । गोली उन्हें आत्मरक्षा के लिए नहीं दी

जाती, जनता की रक्षा के लिए दी जाती है।

अन्नपूर्णा—सविता तुम कहाँ से आ रही हो ?

(लक्ष्मीचन्द्र का प्रवेश—व्यापारी, सबसे बड़े भाई, आयु ५६ वर्ष)

शरत—तुम क्या कह रही हो ?

सविता—मैं ठीक कह रही हूँ...

लक्ष्मी—तुम बिलकुल ग़लत कह रही हो। पुलिस गोली न चलाती तो बैंक लुट जाता, बाज़ार लुट जाता, चारों ओर लूट-मार मच जाती। शासन की जड़ें हिल जातीं।

सविता—शासन की जड़ें हिलतीं या न हिलतीं दादाजी, पर आपकी जड़ें ज़रूर हिल जातीं। आपका व्यापार ठप हो जाता। आपका नुकसान होता.....

लक्ष्मी—हाँ मेरा नुकसान होता। मैं सरकार की प्रजा हूँ। प्रजा की रक्षा करना सरकार का फ़र्ज़ है.....!

सविता—यानी सरकार की पुलिस आपकी रक्षा करने के लिए है।

लक्ष्मी—हाँ मेरी रक्षा करने के लिये है।

सविता—केवल आपकी.....?

अन्नपूर्णा—न, न, सविता। इनका मतलब केवल अपने से नहीं है। भीड़ इनका ही नुकसान करके न रह जाती। वह सारे शहर को बरबाद कर देती।

सविता—भीड़ में इतनी शक्ति है, जीजी ?

शरत—भीड़ में कितनी शक्ति है, सवाल यह नहीं है।

सविता—तो क्या है ?

शरत—सवाल यह है कि क्या भीड़ को कानून अपने हाथ में लेने का अधिकार है ? मैं समझता हूँ उसे यह अधिकार नहीं है !

सविता—और यदि वह लेती है तो.....

शरत—तो वह विद्रोह है और विद्रोह को दबाने का सरकार को पूरा-पूरा अधिकार है ।

सविता—लेकिन विद्रोह क्यों किया गया है यह देखना क्या सरकार का कर्त्तव्य नहीं है ?

[टेलीफोन की घंटी बजती है । शरत एकदम चौंका उठाते हैं । सब उनके पास आते हैं ।]

शरत—हलो...हाँ मैं ही हूँ...क्या स्थिति अभी काबू में नहीं है ? लूट-मार तो नहीं हुई न ? अच्छा...घायल कितने हुए...पाँच वहीं मर गये । बीस घायल अस्पताल में हैं...मैं अभी आता हूँ । अभी.....

(टेलीफोन का चौंका रखकर तेज़ी से जाने को मुड़ते हैं ।)

अन्नपूर्णा—(एकदम) नहीं, नहीं, आप ऐसे नहीं जा सकते ।

लक्ष्मी—हाँ, पहले फोन करके पुलिस बुला लो ।

सविता—पुलिस क्या करेगी ? चलिए मैं चलती हूँ ।

शरत—आप चिन्ता न करें । पुलिस की गाड़ी बाहर खड़ी है ।

सविता—(व्यंग्य से) ज़रूर होगी । जनता के नेता अब पुलिस की गाड़ी में ही जा सकते हैं । (आवेश में) जिन्होंने जनता का नेतृत्व किया, जनता के आगे होकर गोलियाँ खायीं, जो एक दिन जनता की आँखों के तारे थे, वे ही आज पुलिस के पहरे में जनता से मिलने जाते हैं ।

[शरत तिलमिलाकर कुछ कहना चाहते हैं कि तभी तीसरे भाई विजय, पुलिस कप्तान, आयु ४८ वर्ष, पूरी वर्दी में प्रवेश करते हैं ।]

लक्ष्मी—(एकदम) विजय !

सविता—कप्तान साहब आप यहाँ ?

अन्नपूर्णा—विजय, अब क्या हाल है ?

शरत—विजय, तुमने यह क्या कर डाला ! तुमने गोली क्यों चलायी ?
तुम्हें सोचना चाहिए था कि.....

लक्ष्मी—विजय ने जो कुछ किया सोच-समझकर किया है और ठीक किया है ।

अनपूर्णा—हाँ, बिना सोचे-समझे कोई काम कैसे किया जा सकता है ।
सोचा तो होगा ही पर.....

शरत—नहीं, नहीं, यह बहुत बुरा हुआ । जानते नहीं अब जनता का राज है और जनता के राज में, जनतंत्र में, जनता की प्रतिष्ठा होती है ।

विजय—लेकिन गुण्डों की नहीं !

सविता—वे गुण्डे हैं ?

लक्ष्मी—हाँ वे गुण्डे हैं । दंगा करने वाले गुण्डे होते हैं, शोहदे होते हैं !

शरत—नहीं भइया । वे सब गुण्डे नहीं होते । हाँ, गुण्डों के बहकावे में ज़रूर आ जाते हैं ।

सविता—यह भी ख़ूब रही । जनता कुछ गुण्डों के बहकावे में आ जाय और आप लोगों की, जो कल तक उनके सब-कुछ थे, कोई बात न मुने !

शरत—(तिलमिलाकर) सविता...सविता...

सविता—मुनिए भाई साहब ! बात यह है कि आप अपना संतुलन खो बैठे हैं । आप निरंकुश होते जा रहे हैं । आप अपने को केवल शासक मानने लगे हैं । आप भूल गये हैं कि जन-राज में शासक कोई नहीं होता, सब सेवक होते हैं ।

विजय—(थका-सा) सेवक होते हैं तो क्या सेवक मर जाने के लिए हैं ?

सविता—हाँ मर जाने के लिए ही हैं । कोई मरकर देखे तो.....

लक्ष्मी—सविता, बहू ! तुम बहुत आगे बढ़ रही हो । स्वतंत्रता का युग है तो इसका यह मतलब नहीं कि बड़े-छोटे का विचार न किया जाय ।
अन्नपूर्णा—हाँ सविता । तुम्हें इतना तेज़ नहीं होना चाहिए ।

सविता—मैं चूमा चाहती हूँ । आप सब मुझसे बड़े हैं । आपका अपमान मैं कभी नहीं कर सकती, ऐसा सोच भी नहीं सकती । पर इस नाते-रिश्ते से ऊपर भी तो हम कुछ हैं । हम स्वतंत्र भारत की प्रजा हैं, हम एक स्वतंत्र देश के नागरिक हैं । हम इन्सान हैं !

विजय—इन्सान हैं तो सभी हैं । स्वतंत्र देश के नागरिक हैं तो सभी हैं । कानून सब पर लागू होता है ।

लक्ष्मी—बेशक सब पर लागू होता है । सब समान हैं ।

सविता—बेशक सब समान हैं दादाजी, पर जिनपर व्यवस्था और न्याय की ज़िम्मेदारी है, उनका दायित्व अधिक है ।

शरत—ज़रूर है, इसीलिए मुझे जाना है । लेकिन जाने से पहले मैं जानना चाहूँगा विजय, कि आखिर बात कैसे बढ़ गयी ?

विजय—मैं तो वहाँ था नहीं । कल के भगड़े के बारे में आप जानते ही हैं । आज फिर विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किये । डिपो पर हमला किया । वहाँ से वे बैंक के पास आये.....

शरत—क्या उन्होंने बैंक पर हमला किया ।

विजय—कर सकते थे । शायद वे यही चाहते थे ।

शरत—कौन ? विद्यार्थी...

विजय—यह तो नहीं कह सकता । भीड़ में केवल विद्यार्थी ही नहीं थे । शरारती लोग ऐसे अवसरो की ताक में रहते हैं । पुलिस ने भीड़ को रोका तो उन्होंने पत्थर फेंके.....

अन्नपूर्णा—पुलिस पर पत्थर फेंके ?

लक्ष्मी—तब तो ज़रूर उनका इरादा बैंक लूटने का था ।

शरत—क्या पुलिस वालों को चोटें आयीं ?

विजय—जी हाँ दस-बारह सिपाही घायल हो गये । एक इन्स्पेक्टर का सिर फूट गया ।

सविता—बस !

लक्ष्मी—तुम चाहती थीं कि वे सब मर जाते ।

(चौथे भाई सुभाषचन्द्र का प्रवेश—जन-नेता, आयु ४४ वर्ष)

सुभाष—हाँ वे सब मर जाते तो ठीक होता ।

शरत—सुभाष !

अन्नपूर्णा—सुभाष यह तुम क्या कह रहे हो ?

लक्ष्मी—तुम तो कम्युनिस्ट हो गये हो और अपनी बहू को भी तुमने ऐसा ही बना दिया है ।

(बाहर शोर उठता है ।)

सुभाष—दादाजी ! मैं न कभी कम्युनिस्ट था, न हूँ और न कभी बनूँगा पर मैं स्वतंत्र भारत में गोली चलाना जुर्म मानता हूँ ।

लक्ष्मी—चाहे जनता कुछ भी करे ! उसे सब अधिकार हैं ?

सुभाष—बेशक हैं । उसी ने इन लोगों के (शरत की ओर इशारा करता है ।) हाथ में शासन की बागडोर सौंपी है ।

शरत—किसलिए सौंपी है ? रक्षा के लिए या बरबादी के लिए ?

[बाहर शोर तेज़ होता है । सविता चौंकती है । धीरे से बोलती है और बाहर जाती है । शेष लोग तेज़-तेज़ बोलते रहते हैं ।]

सविता—(अलग से) यह शोर कैसा है । देखूँ तो.....

(खिसक जाती है ।)

सुभाष—(शरत की बात का उत्तर देते हुए) रक्षा के लिए !

शरत—लेकिन जब जनता स्वयं नाश करने पर तुल जाय तो क्या हमें उसे ऐसा करने देना चाहिए ?

सुभाष—नहीं !

विजय—(एकदम) यही तो हमने किया है ।

लक्ष्मी—और ठीक किया है ।

शरत—और ऐसा करने का उन्हें अधिकार है । वे हैं ही इसीलिए । तुम भी इसे मानते हो तो फिर कहना क्या चाहते हो ?

सुभाष—यही कि हमें राज्य की रक्षा करते-करते प्राण दे देने चाहिएँ, प्राण लेने नहीं चाहिएँ । हमें देने का ही अधिकार है लेने का नहीं !

शरत—सुभाष ! यह कोरा आदर्शवाद है ।

सुभाष—कर्तव्य का पालन करते हुए मरना यदि आदर्शवाद है तो मैं कहूँगा कि विश्व के प्रत्येक नागरिक को ऐसा ही आदर्शवादी होना चाहिए ।

शरत—सुभाष, तुम केवल बोलना जानते हो ।

सुभाष—आप से ही सीखा है, भाई साहब ।

विजय—लेकिन जिम्मेदारी सभालना नहीं सीखा ।

सुभाष—वह भी सीखा है । मैं जनता से प्रतिज्ञा करके आया हूँ कि आज शाम तक गोली चलाने वाले कप्तान-पुलिस को मोअत्तिल कराके छोड़ूँगा ।

अज्ञपूरा—क्या—क्या कहा तुमने !

लक्ष्मी—अपने ही घर में तुम अपनों के दुश्मन बनकर आये हो ।

सुभाष—अपना-पराया मैं कुछ नहीं जानता । मैं जनता का प्रतिनिधि हूँ । मैं माननीय उप-मंत्री श्री शरतचन्द्र को बताने आया हूँ कि उनके एक अधिकारी ने निहत्थी जनता पर गोली चलाकर जो बर्बर काम किया है, उसकी जाँच करवानी होगी और जब तक वह जाँच पूरी नहीं होती, तब तक गोली चलाने से सम्बन्धित सब व्यक्तियों को मोअत्तिल करना होगा ।

शरत—यह किसकी माँग है ?

सुभाष—उस जनता की जिसने आपको गद्दी सौंपी है, जिससे आज आप दूर भागते हैं, डरते हैं ।

शरत—मैं डरता हूँ ?

सुभाष—हाँ, आप डरते हैं । यदि न डरते तो घर में छिपकर बैठ रहने की बजाय जनता के पास जाते । तब यह नौबत न आती, गोली न चलती, निर्दोष निहत्थे नागरिक न मरते !

शरत—लेकिन तुम भी तो जनता के नेता हो, तुमने कौन-सा तीर मार लिया ?

सुभाष—मैंने क्या किया है, यह मेरे मुँह से सुनकर क्या करेंगे, पर इतना कहे देता हूँ कि जनता संयत न रहती तो कप्तान विजयचन्द्र यहाँ बैठे न दिखायी देते । इनसे पूछिए तो कि क्या इन्हें बन्दूकें इसीलिए दी गयी हैं कि ज़रा-सा पत्थर आ लगे तो जनता को गोली से भून दें.....

लक्ष्मी—गोली न चलती तो.....

सुभाष—(एकदम) दादा जी, आप न बोलें । आप व्यापारी हैं । आपका सिद्धांत आपका स्वार्थ है.....

लक्ष्मी—(एकदम आवेश में) मैं तो स्वार्थी हूँ, पर तुम अपनी कहो । तुम्हारी नेतागिरी भी तो मुझ स्वार्थी के पैसे से ही चलती है ।

सुभाष—ठीक है, उतना पैसा सार्थक होता है...पर आप यह क्यों भूल गये कि उस दिन जब कुछ व्यापारी पकड़े गये थे तो आपने विजय भइया को कितना कोसा था ।

लक्ष्मी—और आज तुम कोस रहे हो । क्योंकि तुम मंत्री नहीं हो, विरोधी दल के हो ।

सुभाष—हाँ मैं विरोधी दल का हूँ, लेकिन दादा जी ! मैं आपसे बातें नहीं कर रहा ।

लक्ष्मी—(क्रोध में) तो मैं ही कब तुमसे बातें कर रहा हूँ, वाह !

(तेज़ी से अन्दर जाते हैं)

अन्नपूर्णा—दादा जी, दादा जी.....

(पीछे-पीछे जाती है, विजय भी जाते हैं ।)

सुभाष—मैं माननीय उप-मंत्री महोदय से पूछता हूँ कि.....

शरत—(एकदम) और मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या जनता के राज में भी सड़कों पर प्रदर्शन होने चाहिएँ, भीड़ को कानून हाथ में लेना चाहिए ।

सुभाष—जब तक सरकार और उसके अधिकारी ठीक आचरण नहीं करेंगे, तब तक जनता प्रदर्शन करती ही रहेगी । कानून हाथ में लेती रहेगी । भाई साहब, इस नौकरशाही ने, शासन की इस भूल ने आपको जनता से दूर कर दिया है ।

शरत—सुभाष, तुम बार-बार एक ही बात की रट लगाये जा रहे हो ।

सुभाष—मैं ठीक कह रहा हूँ । जनता सरकार के ढाँचे को उतना महत्व नहीं देती जितना अधिकारियों की इमानदारी और हमदर्दी को । आप चलिए मेरे साथ.....

(सहसा शोर बढ़ता है ।)

शरत—(एकदम) हाँ मैं चलूँगा, मुझे तो कभी का चले जाना था, पर...यह शोर कैसा है ?

सुभाष—अवश्य कोई बात है । देखूँ.....

[जाने को मुड़ता है तभी लक्ष्मीचन्द्र की पत्नी तारादेवी विचित्र-सी वहाँ आती है ।

तारा—(पागल-सी) विजय कहाँ है ?

(चारों तरफ देखती है ।)

सुभाष—भाभी जी क्या बात है ?

तारा—मैं पूछती हूँ विजय कहाँ है ? उसका मन चाहा हो गया । उसकी गोली अरविन्द के सीने से पार हो गयी.....

शरत—(एकदम) भाभी !

सुभाष—भाभी, तुम क्या कह रही हो !

(सविता का प्रवेश)

सविता—भाभी ठीक कह रही हैं । अरविन्द जनता की सरकार की गोली का शिकार हो गया ।

(लक्ष्मीचन्द्र, विजय, अन्नपूर्णा का प्रवेश)

लक्ष्मी—कौन गोली का शिकार हो गया ?

सविता—अरविन्द !

लक्ष्मी—(कॉपकर) क्या...क्या अरविन्द मर गया ?

तारा—हाँ गोली उसके सीने से पार हो गयी ! वह मर गया !

[सब इक्के-बक्के रह जाते हैं । पागल से देखते हैं । लक्ष्मीचन्द्र सोफे पर गिर पड़ते हैं । विजय दोनों हाथों से मुँह ढक लेते हैं । अन्नपूर्णा पागल-सी तारा को समझावती है और बोलती है :]

अन्नपूर्णा—अरे मेरे अरविन्द को किसने मार डाला, नाश हो जाय इस पुलिस का । बिना गोली कोई बात ही नहीं करता । अरे विजय, यह तुमने क्या किया ?

विजय—(पागल-सा) ओह यह क्या हुआ ? अरविन्द वहाँ क्यों गया था ?

(टेलीफोन की घंटी बजती है, सविता उठती है ।)

सविता—हलो, जी हाँ, हैं, (विजय से) कतान साहब आपका फोन है !

विजय—(फोन लेकर) जी हाँ क्या...भीड़ बेकाबू हो गयी है, टोलीगंज में, आया, अभी आया ।

(चौंका पटककर तेज़ी से किसी की ओर देखे बिना भागता है ।)

सुभाष—मैं भी जाता हूँ कहीं कुछ हो न जाय ।

(जाता है ।)

शरत—मैं भी चलता हूँ ।

(मुड़ता है पर जब तारा बोलती है तो ठिठक जाता है ।)

अनपूर्णा—तारा भाभी जी अन्दर चलें ।

(उठाती है ।)

तारा—(पूर्ववत्) सब जात्रो पर अरविन्द क्या आयेगा ? उसने किसी का क्या बिगाड़ा था । वह चिल्लाया—मैं दंगा नहीं करता, मैं बाज़ार जाता हूँ...

(विबुध हो जाती है ।)

लक्ष्मी—पर मदान्ध पुलिस वालों ने एक न सुनी ! पुलिस को अपनी जान इतनी प्यारी है कि एक दस वर्ष के बच्चे से भी उन्हें डर लगा.....

सविता—(जाते-जाते) किसी ने उसकी आवाज़ नहीं सुनी । किसी ने उसकी ओर नहीं देखा ।

लक्ष्मी—सब अन्धे हैं । ताकत के अन्धे ! जो सामने आता है उसे कुचल देना चाहते हैं । चाहे वह धूल हो चाहे पत्थर.....

शरत—(जाता हुआ व्यथा से) ओह, यह क्या हो रहा है । यह क्या हुआ ?

लक्ष्मी—वही हुआ जो विजय चाहता था, जो तुम चाहते थे ।

शरत—(एकदम) दादा जी.....

लक्ष्मी—(पूर्ववत्) तुमने मेरा घर बरबाद कर दिया । मेरे बच्चे को मार डाला । तुम सब हत्यारे हो.....

शरत—दादा जी, ओह, मैं क्या कहूँ.....

लक्ष्मी—(पूर्ववत्) जब पैसे की ज़रूरत होती है तो मेरे पास भागे-आते हो । टैक्स माँगते हो, दान माँगते हो, व्यापार में पैसा लगाने को कहते हो और...मुझी पर गोली चलाते हो.....

शरत—दादा जी, गोली उन्होंने जान-बूझकर नहीं चलायी । अरविन्द तो बच्चा था ! उससे किसी का क्या बैर था ?

लक्ष्मी—बैर क्यों नहीं था । वह जनता में था और तुम हो जनता के शत्रु ! मैं अभी जाकर विजय से पूछता हूँ.....

(जाने को उठते हैं, सविता आती है ।)

सविता—अभी रुकिए दादा जी । भाभी जी को दौरा पड़ गया है...

(टेलीफोन की घंटी बजती है, उठाती है) हलो, जी हाँ, (शरत से)
आपका फोन है ।

शरत—(फोन लेकर) हलो, जी हाँ । क्या...मंत्रि-मण्डल की बैठक हो रही है, मुझे भी बुलाया है । मैं अभी आया !

(फोन रखकर जाने को मुड़ते हैं, तभी सुभाष का तेज़ी से प्रवेश)

सुभाष—भाई साहब ! आपको अभी चलना है ।

शरत—मैं चल ही रहा हूँ । मंत्रि-मण्डल की बैठक हो रही है ।

सुभाष—वहाँ नहीं, आपको मेरे साथ चलना है । आपको जनता के पास चलना है । जनता में बड़ी उत्तेजना है । विद्यार्थी पीछे रह गये, दूसरे समाजद्रोही तत्व आगे आ गये हैं और विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया है ।

शरत—(पागल-सा) विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया ?

सुभाष—जी हाँ !

शरत—वह कहाँ है ?

सुभाष—भीड़ के सामने !

शरत—वह भीड़ के सामने है ! (एकदम दड़ होकर) चलो सुभाष मैं देखता हूँ, जनता क्या चाहती है ।

(दोनों जाते हैं ।)

सविता—मैं भी चलती हूँ ।

लक्ष्मी—मैं भी चलता हूँ ।

सविता—नहीं, नही, आप ठहरें । आप भाभी जी को सम्भालें ।

(जाती है, तभी अन्नपूर्णा आती है ।)

अन्नपूर्णा—क्या हुआ दादा जी, सब कहाँ गये ?

लक्ष्मी—सब गये । सुभाष आया था । कहता था विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया । अब...अब तो इनकार करना ही था । वे तो मेरे बच्चे को मारना चाहते थे.....

अन्नपूर्णा—नहीं, नहीं, दादा जी यह बात नहीं थी ।

लक्ष्मी—यह बात नहीं थी ? मैं उन सबको जानता हूँ । वे मेरे पैसे से आगे बढ़े और मुझी को बरबाद कर दिया । मैं पूछता हूँ उन्होंने पहले ही गोली चलाने से इनकार क्यों न किया । क्योंकि... क्योंकि.....

अन्नपूर्णा—नहीं, दादा जी, नहीं.....

लक्ष्मी—(आवेश में) ये मेरे छोटे भाई...एक ने मुझे स्वार्थी, देशद्रोही कहा, दूसरे ने मेरे बेटे को मार डाला । मेरे मासूम बच्चे को मार डाला, मार डाला ।

(रोक गिर पड़ते हैं ।)

अन्नपूर्णा—(सग्हलती हुई) दादा जी, दादा जी । ओह, यह एक ही घर में क्या होने लगा । भाई-भाई में यह मनमुटाव । (एकदम) नहीं, नहीं, यह नहीं होगा । दादा जी, आप गलत समझ रहे हैं.....

लक्ष्मी—(आँखें खोलकर) मैं गलत समझ रहा हूँ...मैं गलत समझ रहा हूँ...अरविन्द, मेरे बच्चे, तू चला गया, मैं तुझसे दो बातें भी न कर सका, तू तो भीड़ में नहीं था ! अरविन्द.....

(तारा का प्रवेश)

तारा—अरविन्द । क्या अरविन्द आया है ! कहाँ है ?

(अन्नपूर्णा तारा को पकड़ती है ।)

अन्नपूर्णा—भाभी जी, भाभी जी आप क्यों उठ आयीं । हम अभी अस्पताल चलते हैं । आप अपने को सग्हलिए ।

[अन्दर ले जाती है । लक्ष्मीचन्द्र भी जाते हैं । तभी अस्त-व्यस्त, परेशान सविता का प्रवेश]

सविता—(बोलती जाती है) अद्भुत दृश्य था, अपार भीड़ थी, उनके आगे खड़े थे कप्तान भइया । दूर से देख सकी । किसी ने पास जाने ही नहीं दिया । एक रेला आया और मैं पीछे आ पड़ी ।

(अन्नपूर्णा आती है ।)

अन्नपूर्णा—तुम आ गयी । वे लोग कहाँ हैं ? सुभाष कहाँ है ?

सविता—कुछ पता नहीं, मुझे किसी का कुछ पता नहीं । मैं आगे नहीं बढ़ सकी और वे दोनों आगे बढ़े चले गये । एक बार भीड़ के बीच में सब को देखा फिर उस ज्वार-भाटे में सब-कुछ छिप गया । (टेन्नीफ़ोन की घंटी बजती है, उठाती है) हलो, जी हाँ, जी वे तो गये । जी हाँ भीड़ में जाते मैंने देखा था । जी हाँ । (फ़ोन रखती है) मंत्रि-मण्डल की बैठक में शरत भाई साहब का इन्तज़ार हो रहा है । वे अभी तक पहुँचे ही नहीं । मैं कहती हूँ ये लोग मंत्रि-मण्डल की बैठकें क्यों कर रहे हैं । जो लोग विदेशियों की गोलियों से नहीं डरे, वे अपने ही बच्चों और भाइयों से क्यों डरते हैं ? जनता में क्यों नहीं आते.....

अन्नपूर्णा—क्योंकि शासन भीड़ में आकर नहीं चलाया जाता । आखिर जनतंत्र भी तो कानून का राज है ?

सविता—है, पर...(एकदम) नहीं, अब बहस करने का समय नहीं है । सोचने का और काम करने का समय है । बेचारा अरविन्द ! उसकी मौत हुई । जन-राज में एक निर्दोष, निरीह, बालक की हत्या क्यों हुई ? (टेन्नीफ़ोन की घंटी फिर बजती है, उठाकर) हलो, क्या, हाँ, हाँ, कप्तान साहब तो कभी के चले गये । क्या, उनका पता नहीं मिल रहा ! नहीं, नहीं वे...वे भीड़ के सामने थे । मैंने देखा था । जी हाँ मैंने देखा था । उधर का क्या हाल है, ठीक नहीं,

हूँ । उनके हुक्म के बिना कुछ नहीं कर सकते...हाँ, हाँ, आये तो कह दूँगी...क्या...कोई आया है । हाँ, हाँ, पूछिए...हलो...हलो...हलो...(फोन रखकर) कनेक्शन काट दिया...अवश्य कोई बात है । (जाने को मुड़ती है) मैं जाती हूँ...

अन्नपूर्णा—सविता ! तुम न जाओ । ठहरो तो सविता.....(सविता नहीं रुकती) गयी ।

लक्ष्मी—(आकर) कौन गयी ? क्या बात है ?

अन्नपूर्णा—ज़रूर कोई बात है । सविता टेलीफोन कर रही थी, पता नहीं किसी ने क्या कहा, भागी चली गयी ।

लक्ष्मी—तो मैं भी जाता हूँ । अरविन्द को भी लाना है ।

(गन्ना रुँध जाता है, तेज़ी से जाते हैं ।)

अन्नपूर्णा—दादा जी ! अभी रुकिए ! किसी को आ जाने दीजिए ।

लक्ष्मी—घबराओ नहीं, मैं बच्चा नहीं हूँ ।

[जाते हैं, दूसरे द्वार से विजय की पत्नी उमा, आयु ४२ वर्ष पागलों की तरह आती है ।]

उमा—जीजी ! सब कहाँ हैं ?

अन्नपूर्णा—मुझे पता नहीं । यहाँ से तो कभी के गये । क्या तुम्हें सविता नहीं मिली ।

उमा—मुझे कोई नहीं मिला, अरविन्द की खबर सुनकर भागी आ रही हूँ । जीजी...जीजी, मैं भाभी जी को कैसे मुँह दिखाऊँगी ? मैं मर क्यों न गयी ।

अन्नपूर्णा—(शून्यवत्) न जाने क्या होने वाला है । एक ही घर के लोग एक-दूसरे को खा रहे हैं । (बाहर भीड़ का शोर) यह क्या ? लोग इधर आ रहे हैं ।

उमा—(द्वार पर जाकर देखती है, चीख पड़ती है) जीजी...ई...ई...!

अन्नपूर्णा—क्या हुआ ? क्या हुआ उमा ?

[उठकर तेजी से आगे बढ़ती है। तभी घायल शरत वहाँ आते हैं। मुखपर घाव हैं। एक हाथ बँधा है।]

अन्नपूर्णा—(काँपकर) आप ! यह क्या हुआ ?

शरत—वही जो होना चाहिए था। विजय भीड़ में कुचला गया, पर उसने गोली नहीं चलायी।

उमा—कुचले गये, कौन ?

शरत—विजय कुचला गया। चला गया।

उमा—(चीखकर) भाई साहब, वे कहाँ हैं !

(भागती है।)

अन्नपूर्णा—(शरत से) यह तुम क्या कह रहे हो ?

शरत—भीड़ सन्तुलन खो बैठी थी, विवेक खो बैठी थी। वह चिल्लाती रही—‘अरविन्द कहाँ है ? अरविन्द को लौटाओ !’ और विजय भीड़ के सामने झड़ा रहा। चिल्लाता रहा—‘मुझसे अरविन्द का बदला लो। मैंने अरविन्द को मारा है। तुम मुझे मार डालो !’

उमा—और भीड़ ने उन्हें मार डाला।

शरत—पता नहीं किसने मार डाला—उनके गिरते ही भीड़ पर जैसे अंकुश लग गया, पर...पर—जब वहाँ शांति हुई तो विजय और सुभाष दोनों कुचले हुए पड़े थे।

उमा—सुभाष भी !

अन्नपूर्णा—सुभाष भी कुचला गया। हाय.....

शरत—हाँ सुभाष भी कुचला गया। लेकिन खबरदार जो उनके लिए रोये। रोने से उन्हें दुख होगा। उन्होंने प्राण दे दिया, पर शासन और जनता का सन्तुलन ठीक कर दिया। वे शहीद हो गये, पर दूसरों को बचा गये। नगर में अब बिलकुल शांति है। सब मौन, सगर्व इन बलिदानों की चर्चा कर रहे हैं। सब शोक-संतप्त हैं।
(बाहर देखकर) लो वे आ गये। रोना मत...रोना मत...(आगे

बढ़कर) हाँ, वहीं लिटा दो.....

[तभी लक्ष्मीचन्द्र और सविता के साथ पुलिस के तथा दूसरे अधिकारियों का प्रवेश । धीरे-धीरे वे विजय, सुभाष और अरविन्द की लाशें बराबर के कमरे में लाकर रखते हैं । एक भयंकर सजाटा छाया रहता है । सविता का मुख पत्थर की तरह कठोर है । लक्ष्मीचन्द्र तूफ़ान की तरह कॉप रहे हैं । शरत हड़ता से प्रबन्ध में लगे हैं । सहसा उमा तेज़ी से बढ़ती है, बराबर के कमरे में झाँककर जोर की छील मारती है :]

उमा—माँ...SS री...ई...यह क्या हुआ ?

(तारा-अन्दर से आती है ।)

तारा—कैसा शोर है अन्नपूर्णा । अरविन्द आ गया । कहाँ है ?

शरत—भाभी यह देखो, कमरे में तीनों लेटे हैं । कभी नहीं उठेंगे । ये अरविन्द और सुभाष हैं—यह जनता की क्षति है । और इधर यह विजय है—यह सरकार की क्षति है ।

अन्नपूर्णा—(रोकर) यह तुम कैसी बावलों की-सी बातें करते हो । यह सब मेरे घर की क्षति है ।

सविता—(उसी तरह पत्थर-बत) नहीं जीजी । यह घर की नहीं, सारे देश की क्षति है, देश क्या हमसे और हम क्या देश से अलग हैं ?

शरत—तुमने ठीक कहा सविता । यह हमारे देश की क्षति है । जनतंत्र में सरकार और जनता के बीच कोई विभाजक-रेखा नहीं होती...

(पर्दा गिरता है ।)

‘नवजोती’ की नयी हीरोइन



सत्येन्द्र शर्मा

पात्र

रामेश्वर

मालती

भगवान

अभिमन्यु

आगन्तुक

[बम्बई के अढ़ाई कमरे वाले एक फ्लैट का सजा हुआ ड्राइंग-रूम । फ़र्नीचर और सजावट के सामानों को गिनाना व्यर्थ है, इसलिए कि यदि यह नाटक खेला गया तो खेलने वाले अपने साधन और अपनी सुविधा के अनुसार ये सब चीज़ें जुटायेंगे, मेरी दी हुई सूची के अनुसार नहीं । वैसे आम फ़र्नीचर के साथ एक कोने में एक कुर्सी और एक राइटिंग टेबल भी हो तो अच्छा है । टेलिफ़ोन उसी टेबल पर होगा ।

कमरे के दो दरवाज़े हैं—दायीं और बायीं ओर । दोनों दर्शकों से अदृश्य हैं । बायीं ओर का दरवाज़ा फ़्लैट का प्रमुख द्वार है, जिससे आगन्तुक आयेंगे । दायीं ओर का दरवाज़ा अन्दर बेड-रूम और किचन में जाता है । नौकर इस द्वार से स्टेज पर आयेगा ।

पर्दा उठने पर घर का नौकर फ़र्नीचर और दूसरा सामान ढाड़ता-पौछता दीख पड़ता है । पहाड़ी लहजे में वह कोई गीत भी गुनगुना रहा है ।

कुछ क्षण बाद एक सुन्दर, स्वस्थ युवक दायीं ओर से अन्दर आता है । यह घर का स्वामी रामेश्वर है । वह एक ओर चुपचाप खड़ा

हो जाता है और नौकर को गीत गाते देखता रहता है । सहसा वह आगे बढ़ता और नौकर को पुकारता है ।]

रामेश्वर — भगवान !

भगवान—(चौंकता है और रामेश्वर को देखता है ।) जी बाबू जी !

रामेश्वर—भगवान, तुम काम कम करते हो और गाना ज्यादा गाते हो...

भगवान—(दोनों हथेलियाँ मलता हुआ) बाबू जी, मैं खाली बैठे गाना नहीं गाता । मैं तो काम करते हुए गाना गाता हूँ...जितना गाता हूँ उतना ही काम करता हूँ ।

रामेश्वर —अच्छा अच्छा । तुमने सब चीजें ठीक-ठाक कर ली हैं न ?

भगवान—जी बाबू जी, बस चिवड़ा रह गया है । कमरा साफ़ करके मैं अभी चिवड़ा तैयार करता हूँ ।

रामेश्वर—अच्छा तो जल्दी करो...(दीवारघड़ी की ओर देखता हुआ) पाँच बजने वाले हैं ।

भगवान—(अन्दर की ओर जाता हुआ) जी बाबू जी !...(सहसा रुककर रामेश्वर को सम्बोधित करता हुआ) बाबू जी !

रामेश्वर —क्या बात है ?

भगवान—बाबू जी, बीबी जी सचमुच ही फिलिम कम्पनी में जा रही है ?

रामेश्वर —क्यों ? तुमसे मतलब ?

भगवान—जी, अगर बीबी जी को फिलिम में काम मिल रहा है तो बाबू जी फिर मेरे भी भाग जग गये । फिर तो बाबू जी, बीबी जी की वजह से मुझको भी कहीं चानस मिल जायगा ।

रामेश्वर—(रस लेते हुए) क्यों, तुमको भी फिलिम में काम करने का शौक है ?

भगवान—(गहरी साँस लेकर) अजी बाबू जी, इसी शौक की वजह से तो घर से भागकर यहाँ बम्बई आया हूँ ।

रामेश्वर—(मुस्कराकर) अच्छा, अगर तुम्हें बीबी जी से अपनी

सिफारिश करवानी है तो तुम्हें चाहिए कि अपने काम से अपनी बीबी जी को हमेशा खुश रखो...तभी बीबी जी तुम्हारे लिए भी कोशिश करेंगी ।...समझ गये न ?

भगवान—(सिर हिलाता हुआ) जी...समझ गया ।

रामेश्वर—अच्छा, अब बातें मत करो । तुम्हारी बीबी जी कपड़े बदलकर यहाँ आने ही वाली हैं । उनके यहाँ आने से पहले ही तुम किचन में पहुँचकर काम में जुट जाओ !

भगवान—अच्छा जी.....

(लेकिन जाता नहीं, खड़ा रहता है ।)

रामेश्वर—जाओ भागो !

भगवान—(जाते हुए) जा रहा हूँ बाबू जी !

[भागता हुआ सा अन्दर चला जाता है । रामेश्वर मुस्कराता हुआ खड़ा रहता है और कमरे में चारों ओर दृष्टि फेंकता है । कुछ क्षण बाद वह दायीं ओर बढ़ता है और दायें प्रवेश-द्वार के निकट खड़ा होकर कहता है —]

रामेश्वर—अरे मालती, तुम अभी तक तैयार ही नहीं हुई !

मालती—(अन्दर से) हो गयी हूँ । बस, साड़ी पहन रही हूँ ।

रामेश्वर—वह तो तुम पिछले आधे घंटे से पहन रही हो...(हँसकर) किसी बड़े आदमी ने सच ही कहा है, जितने समय में औरतें कपड़े पहनकर तैयार होती हैं, उतने समय में किसी देश की किस्मत का फैसला हो सकता है—मैं तो बल्कि यह कहना चाहूँगा कि किसी एक देश का नहीं, सारे संसार की किस्मत का फैसला हो सकता है ।

मालती—(हँसकर) और मजा यह कि इतना सब हो चुकने पर भी स्त्री तैयार न हो पायेगी ...

रामेश्वर—(जोर से हँसता है ।) मालती, जीवन में आज पहली बार

इंटेलिजेंट बात कही है तुमने! ज़रा इसी बात पर बाहर तो आ जाओ.....

मालती—यह लीजिए आ गयी ।

[सुन्दर और क्रीमती रेशमी कपड़ों में आवृत्त मालती दाहिनी ओर से आती है । रामेश्वर उसे देखता रहता है । मालती लजा जाती है ।]

मालती—(लजाये स्वर में) ऐसे क्या देख रहे हैं ?

रामेश्वर—(मुस्कराकर) कुछ नहीं । कभी-कभी पुरानी आदतें याद आ जाती हैं ।

मालती—(लजाकर) अच्छा, बैठ तो जाइए ! आपको खड़े रहने की सज़ा किसने दी है ?

रामेश्वर—(बैठते हुए) यों ही । तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था । तुम भी तो बैठो ।

मालती—लीजिए ।

(सोफ़े पर बैठ जाती है ।)

रामेश्वर—(मालती की ओर देखते हुए) अच्छा, तो 'नवजांती फ़िल्म्स' के डायरेक्टर ने तुम्हें अपनी इसी पिकचर में एक साइड-रोल दे दिया है !

मालती—हाँ...मिसेज़ कांतावाला क बहुत कहने पर ही बेराज़ी हुए... बात यह है कि उनकी कास्टिंग हो चुकी है ।

रामेश्वर—ओ !...तो जो रोल तुम करने जा रही हो, वह पहले कौन कर रहा था ?

मालती—कोई मिस अंजलि मेहता थीं ।.....अब उनकी जगह मैं यह रोल कलूंगी । डायरेक्टर साहब कह रहे थे कि इस पिकचर में तो रोल बहुत छोटा है, लेकिन अगली पिकचर में उन्होंने मुझे बड़ा रोल देने का प्रॉमिज़ किया है ।

रामेश्वर—(हँसकर) हाँ, अगर उनकी अगली पिकचर बनी तो...

मालती—(बात काटकर) क्या मतलब ?

रामेश्वर—भई, इस लाइन का क्या भरोसा.....? खैर, आखिर डायरेक्टर साहब ने क्या कहा ?

मालती—उन्होंने कहा था कि वे आज अपने प्रोडक्शन-मैनेजर को यहाँ भेजेंगे, ताकि वह कुछ ज़रूरी जानकारी हासिल कर ले और मुझसे इस पिकचर के लिए टर्म्ज़ आदि तय कर ले...

रामेश्वर—(स्वर में किंचित् आश्चर्य है) टर्म्ज़ प्रोडक्शन-मैनेजर तय करता है ?...

मालती—हाँ। बात यह है कि प्रोडक्शन-मैनेजर, पिकचर के फ़नाँसर सेठ बुलाकीदास दामोदरमल का ख़ास आदमी है। सेठ जी उसी की मानते हैं। अगर प्रोडक्शन-मैनेजर मुझसे इम्प्रेस हो जाय और सेठ जी से मेरे फ़ेवर में बात करे, तो मेरे चान्सेज़ बड़े स्ट्रॉंग हो जाते हैं.....

रामेश्वर—यानी ?.....

मालती—यानी इस पिकचर में भी अच्छे पैसे मिल जायेंगे और अगली पिकचर में तो हो सकता है कि मुझे ही हीरोइन ले लिया जाय...

रामेश्वर—और इस तरह तुम्हारी क्रिस्मत जाग उठेगी।

मालती—साथ में तुम्हारी नहीं ?

रामेश्वर—हाँ, अब तो मेरी-तुम्हारी क्रिस्मतेँ जुड़ गयी हैं...(मुस्कराकर) चलो, यह सौभाग्य भी बिरलों को ही नसीब होता है।

मालती—(कुछ आश्चर्य से) कौन-सा सौभाग्य ?

रामेश्वर—पत्नी के टिकट पर ख्याति पाना.....

मालती—(उठ खड़ी होती है) अच्छा, अब बातें बनाना छोड़िए। कुछ काम कीजिए।

रामेश्वर—(फुर्ती से उठ खड़ा होता है) आज्ञा दीजिए, क्या काम है ?

मालती—(व्यग्र स्वर में) ज़रा देखना, चाय और खाने का सब सामान तैयार है न ?

रामेश्वर—इतनी छोटी छोटी बातों की चिन्ता कर अपना यह सुन्दर शरीर धुलाने लगोगी तो फिर हीरोइन कैसे बनोगी ?

मालती—तुम्हें तो हमेशा मज़ाक ही सूझता रहता है ।

रामेश्वर—हमेशा नहीं, तुम्हें देखकर ही !

मालती—अच्छा इस वक़्त रहने दो । ज़रा देख लो, सब चीज़ें ठीक हैं न ?

रामेश्वर—हाँ सब ठीक हैं । सिर्फ़ चिवड़ा अभी तक तैयार नहीं हुआ ।

मालती—(चिढ़े स्वर में) दो घंटे हो गये हैं, अभी तक तैयार नहीं हुआ ! यह भगवान बहुत सुस्त है ।

रामेश्वर—(हँसकर) क्या करे बेचारा ? इस नाम के सभी जीव-जन्तु सुस्त होते हैं ।

मालती—(चिढ़कर) तुम हमेशा उसका पक्ष लेते हो । क्या बात है ?

रामेश्वर—भाई मैं आस्तिक हूँ । भगवान का पक्ष न लूँ ?...और फिर इस ब्रम्हर्षि में भगवान—मेरा मतलब है नौकर—मिलते कहाँ हैं !

मालती—हाँ, (घड़ी की ओर देखती हुई) यह घड़ी भी कमबख़्त सुस्त हो गयी है । कितने धीरे-धीरे चल रही है ।

रामेश्वर—आज तो तुम्हें सभी चीज़ें सुस्त दीखेंगी । आज तुम्हारा दिल जो बल्लियों उछल रहा है ।

मालती—तुम्हारी घड़ी में क्या टाइम है ?

रामेश्वर—दीवार-घड़ी ठीक है । दोनों घड़ियों में एक ही टाइम है—पाँच बजने में दो मिनट ।

मालती—ओह ! अभी तक दो मिनट बाकी हैं ।

रामेश्वरी—(हँसकर) कहो तो घड़ी की सुई आगे सरका दूँ । अभी पाँच बज जायेंगे ।

मालती—(अचानक) सुनो जी, जैसे-जैसे घड़ी की सुई आगे सरक रही है, मेरा दिल धबरा रहा है। कुछ नर्वसनेस मालूम हो रही है। क्या करूँ ?

रामेश्वर—(हँसकर) नौशादर की शीशी सूँघ लो। तबियत भक़् हो जायेगी।

मालती—फिर मज़ाक। बड़े बेरहम हो !

रामेश्वर—अच्छा, मुझे एक बात तो बता दो। वह जो तुम्हारे प्रोडक्शन-मैनेजर साहब आने वाले हैं न, उनके सामने मुझे क्या करना होगा ?

मालती—कुछ नहीं। आराम से राइटिंग-टेबल पर कुछ पढ़ते-लिखते रहना। हम लोग (सोफ़े की ओर इशारा कर) यहाँ बातें करते रहेंगे।

रामेश्वर—ठीक है। (अचानक) हाँ मालती, यह तो बताओ कि मिस्टर कोलम्बस का सही नाम क्या है ?

मालती—(साश्चर्य) कोलम्बस !

रामेश्वर—हाँ हाँ; जिन्होंने तुम्हारी डिस्कवरी की है—यानी जिनकी तुम नयी खोज हो।

मालती—ओह ! (हँसती है) उनका नाम मिस्टर जाधव राव है।

रामेश्वर—(हँसता है, फिर घड़ी की ओर देखकर) लो, पाँच भी बज गये।

मालती—(आकुलता से) अब प्रोडक्शन-मैनेजर साहब आने ही वाले होंगे।

रामेश्वर—(मुस्कराकर) हाँ, अगर उनकी घड़ी में भी पाँच बज गये होंगे तो।

मालती—(बायें दरवाज़े तक जाती है, सहसा मुड़ती है) अच्छा जी, तुमने मेरे नये फ़ोटोग्राफ़्स देखे !

रामेश्वर—वे जो तुमने फ़िल्म के इस इन्टरव्यू के लिए खिंचवाये हैं ?

मालती—हाँ !

रामेश्वर—नहीं, तुमने दिखाये ही नहीं ।

मालती—अभी लो...(चंचलता से) ज़रा बताना, कैसे हैं ? (राइटिंग-टेबल की ड्राअर में से एक लिफ़ाफ़ा लाती हैं) लो, ये देखो...

रामेश्वर—लिफ़ाफ़े में से तस्वीरें निकालता है, देखते हुए) हूँ...गुड ।
...बेरी गुड !...स्टूडियो शां-ग्रीला में खिचवाये हैं न !

मालती—(चेहरे पर प्रसन्नता है) हाँ !

रामेश्वर—(एक फ़ोटो देखते हुए) अच्छा ! इस फ़ोटो में आप ने हाथ में फूल भी ले रखा है । यह किस लिए साहब ?

मालती—जिससे फ़ोटो में स्वाभाविकता आ जाय ।

रामेश्वर—(हँसता है) ओह ! मैं तो समझा था कि.....

मालती—क्या ?

रामेश्वर—कि फ़ोटो में खुशबू आ जाय । (धीम हँसी) नहीं साहब यह तीनों पोज़ अच्छे हैं ।

मालती—(प्रसन्न स्वर में, लेकिन बनती हुई) भई, मुझे तो यह पोज़ पसन्द नहीं ।

रामेश्वर—क्यों ? इसमें क्या ख़राबी है ?

मालती—देखो न...इसमें मेरी नाक कितनी छोटी है !

रामेश्वर—(हँसकर) क्या हर्ज है ? साल-दो-साल में अपने-आप बड़ी हो जायगी ।

मालती—(बनकर) तुम फिर मज़ाक कर रहे हो !

रामेश्वर—नहीं, सीरियसली कह रहा हूँ । इस फ़ोटो में तो मुझे दूसरा ही डिफ़ेक्ट नज़र आता है ।

मालती—क्या ?

रामेश्वर—तुमने गले में जो हार पहन रखा है वह इतना बढ़िया है कि सारा ध्यान तो यही खींच लेता है । हुआ यह है कि इस फ़ोटो में

यह हार फोरग्राउंड में आ गया है और तुम्हारा चेहरा बैकग्राउंड में चला गया है ।

मालती—(खीजकर) अच्छा, लाइए फोटोग्राफ्स ! मेरी गलती थी जो मैंने आपको दिखाये ।

(रामेश्वर हँसता है —सहसा कॉलबेल बजती है ।)

मालती—(मुदित स्वर में) लो वे आ गये हैं, मालूम पड़ता है ।

रामेश्वर—ये फोटो कहाँ रखूँ ?

मालती—उधर डाल दो न मेज़ पर । (आवाज़ देती है ।) भगवान !

ओ भगवान !

भगवान—(अन्दर से) जी बीबी जी (चिवड़े की तश्तरी लिये भागा चला आता है)...जी बीबी जी ।

मालती—देख दरवाज़े पर जो साहब हैं, उन्हें अन्दर ले आ ।

भगवान—अच्छा जी, बीबी जी ।

(बायीं ओर जाने लगता है ।)

मालती—गधे, वह चिवड़े की तश्तरी हाथ में लिए बाहर कहाँ जा रहा है ? उसे यहाँ रख दे न !

भगवान—ओह ! गलती हो गयी बीबी जी ।

(तश्तरी मेज़ पर रखता है ।)

मालती—जल्दी जा ।

भगवान—(जाते हुए) जा रहा हूँ बीबी जी ।

मालती—(सहसा) अरे भगवान सुनो सुनो !

भगवान—(वापस आकर) जी बीबी जी !

मालती—एकदम दरवाज़ा मत खोल । पहले भिरमिरी में से भाँककर देख आ कि कौन साहब हैं बाहर ।

भगवान—अच्छा बीबी जी ।

(बाहर चला जाता है ।)

रामेश्वर—क्यों, इस बात का क्या मतलब ?

मालती—थोड़ी सावधानी बरतने में क्या हर्ज है ? यह भी तो हो सकता है कि यह कॉल-बेल प्रोडक्शन-मैनेजर साहब की बजाय हमारे किसी परिचित या मित्र ने बजायी हो ।

रामेश्वर—(सोचता-सा) वैसे आज किसी के आने की बात नहीं थी ।

मालती—अजी, ये मित्र या परिचित लोग पहले से टाइम तय करके थोड़े ही आया करते हैं ?

(भगवान भागा-भागा आता है ।)

भगवान—बीबी जी, एक मोटे-से साहब दरवाजे पर खड़े हैं ।

रामेश्वर—मोटे-से साहब ?

मालती—मोटे से साहब ! (रामेश्वर को देखती हुई) हमारे जानकारों में तो कोई मोटे-से साहब हैं नहीं । यक्रीनन वे प्रोडक्शन-मैनेजर ही हैं । जा, भागता हुआ जा और उन्हें फौरन अन्दर ले आ ।

भगवान—(भागता जाता है) अच्छा जी.....

मालती—(झटते स्वर में) तुम अब यहाँ इस तरह मत खड़े रहो । वहाँ कुर्सी पर बैठ जाओ । 'फिल्मफेयर' पड़ा है, उसे देखते रहो । (रामेश्वर बिना कुछ बोले कुर्सी की ओर बढ़ता है) पर तुम अपना कालर तो ठीक कर लो । (रामेश्वर अपना कालर ठीक करने लगता है) लेकिन पहले ज़रा तुम मेरा जूड़ा ठीक कर दो !

[रामेश्वर अपना कालर वैसे ही छोड़ मालती का जूड़ा ठीक करने लगता है ।]

रामेश्वर—(ठीक करके) यह लो.....

मालती—अब ठीक है न ?.....

रामेश्वर—(मुस्कराकर) फ़र्स्ट क्लास !

मालती—(धीमे स्वर में) सुनो जी, मैं कैसी लग रही हूँ ?

रामेश्वर—(उसको बाहों में लेने का प्रयास करते हुए) सुनना चाहती

हो तो.....

मालती—(अपने को रामेश्वर की बाहों से छुड़ाते हुए) छोड़ो जी ! देखो वे साहब आ गये हैं ।

[भगवान के साथ एक मोटे-से साहब अन्दर पधारते हैं ।
रामेश्वर मालती को मुक्त कर देता है । मालती उन सज्जन को देख निराशा से रामेश्वर की ओर देखती है ।]

मालती—(नमस्ते करती हुई) नमस्ते अभिमन्यु जी.....

अभिमन्यु—(हाथ जोड़ नमस्ते करता है) नमस्ते मालती जी.....

मालती—आइए, आइए । इधर बैठिए ।

अभिमन्यु—(बैठता हुआ) धन्यवाद ! (रामेश्वर की ओर इशारा कर)
आप शायद देवटिया साहब है ?

मालती—(मुस्कराकर) जी हाँ !

(रामेश्वर अभिमन्यु जी को नमस्ते करता है ।)

रामेश्वर—(अभिमन्यु की ओर संकेत कर) मालती, आपकी तारीफ़ ?

मालती—ओह ! आप हैं श्री अभिमन्यु पांडे—‘माहीम आर्ट थियेटर’
के सेक्रेटरी । स्वयं भी बहुत अच्छे अभिनेता हैं । पिछले वर्ष
क्लब की ओर से जो ‘उत्तरा अभिमन्यु’ नाटक हुआ था न...

रामेश्वर—हाँ हाँ.....

मालती—उसमें अभिमन्यु का पाट आप ही ने किया था ।

रामेश्वर—(मुस्कराकर) ओह ! साहब बड़ी प्रसन्नता हुई आप से
मिनकर । कहिए, आज हम पर कैसे कृपा की ?

अभिमन्यु—(मुस्कराकर) अजी, कृपा कैसी ? अपने स्वार्थ से आया
हूँ । मालती जी को फिर कष्ट देना है ।

मालती—किस बात के लिए ?

अभिमन्यु—इस बार ‘माहीम आर्ट थियेटर’ की तरफ़ से ‘चट्टान’
ड्रामा खेला जा रहा है । मिस्टर रायमोहन ही डायरेक्ट कर रहे हैं ।

कल एक इन्फॉर्मल मीटिंग कर, हमने उसकी कॉस्टिंग कर ली थी। लीडिंग रोल आप कर रही हैं। इस बुधवार को ६ बजे उसकी पहली रिहर्सल है—गोखले हॉल, बी. बी. सी. आई. दादर में। आपको आना है।

मालती—माफ़ कीजिए, मैं न आ सकूंगी।

अभिमन्यु—(घबराये स्वर में) क्यों आपकी तबियत तो ठीक है?...

मालती—जी हाँ तबियत तो ठीक है। पर मैं ड्रामे में पार्ट न कर सकूंगी।

अभिमन्यु—(साश्चर्य) यह आप क्या कह रही हैं मालती जी? हमारे पिछले ड्रामों की कामयाबी में आपका बहुत बड़ा हाथ रहा है। आपके भरोसे पर ही हमने इस बार इतना मुश्किल ड्रामा चुना है। मिस्टर रायमोहन की तो शुरू ही से यह राय थी।

मालती—आप मिस्टर रायमोहन को मेरा धन्यवाद कह दीजिएगा और मेरी ओर से माफ़ी माँग लीजिएगा।

अभिमन्यु—पर ड्रामे में काम न करने की वजह तो बता दीजिए। क्या हम लोगों से कोई गलती हो गयी है?

मालती—जी नहीं। बात यह है कि मुझे एक फ़िल्म में काम मिल गया है। अगले महीने से उस फ़िल्म की शूटिंग है। मैं दो नावों में न चल सकूंगी।

अभिमन्यु—(इताश स्वर में) तो आपने भी फ़िल्म्स ज्वाइन कर लीं? ख़ैर!...किस पिकचर में काम कर रही हैं आप?

मालती—पिकचर का नाम तो नहीं मालूम। पर उसे नवजोती फ़िल्म कम्पनी प्रोड्यूस कर रही है।

अभिमन्यु—(साश्चर्य) नवजोती फ़िल्म कम्पनी! पर मालती जी नवजोती की एक अभिनेत्री तो हमारे ड्रामे में भी काम कर रही हैं। बहुत कोशिश कर रही हैं बेचारी कि हीरोइन का रोल मिल जाय

उन्हें । कल ही आयी हैं ।

मालती—(कौतूहलपूर्वक) क्या नाम है उनका ?

अभिमन्यु—मिस अंजलि मेहता ।

मालती—(प्रसन्न होकर) जरूर कोशिश कर रही होंगी ! उस पिक्चर में जो रोल वे करने वाली थीं, वह अब मैं कर रही हूँ । अब बेचारी स्टेज पर काम न करेंगी तो क्या करेंगी ?

अभिमन्यु—अच्छा !

मालती—जी हाँ । खैर आप अपने ड्रामे में मेरा रोल उन्हें दे दीजिए ।

अभिमन्यु—जी मजबूरी में यह तो करना ही होगा । वैसे तो ज्यादा अच्छा यही होता कि आप ही हीरोइन का रोल करतीं ।

मालती—मैंने अपनी मजबूरी आपको बतला दी अभिमन्यु साहब ।

(खड़ी हो जाती है ।)

अभिमन्यु—(खड़े होते हुए) आप एक बार और सोच लीजिएगा मालती जी । मैं टेलीफोन नम्बर छोड़े जाता हूँ । अगर आपकी राय बदल जाय तो मिस्टर रायमोहन को रिंग कर लीजिएगा ।

मालती—नहीं । उसकी कोई जरूरत नहीं अभिमन्यु साहब । मैंने अच्छी तरह सोचकर ही आप को इनकार किया है ।

अभिमन्यु—(विवशता से) जैसी आपकी इच्छा मालती जी । आप से प्रार्थना करना मेरा कर्तव्य था । उसका मैंने पालन किया ।

मालती—आपको निराश करते हुए मुझे भी दुःख हो रहा है ।

अभिमन्यु—नहीं जी । कोई बात नहीं । अच्छा तो मैं चलूँगा, नमस्ते... नमस्ते...

मालती—नमस्ते ।

(अभिमन्यु जाता है ।)

रामेश्वर—(अभिमन्यु की पीठ से) नमस्ते ! (मालती के निकट आता हुआ) टेलीफोन नम्बर तो रख लिया होता मालती ।

मालती—क्या ज़रूरत थी, जब मैं इस ड्रामे में काम ही नहीं कर रही ! एक साथ तो मैं दो जगह कंसर्ट्रेट नहीं कर सकती !

रामेश्वर—तो भी । नम्बर रख लेने में हर्ज ही क्या था ? वक्त-ज़रूरत काम आता ।

मालती —जी हाँ । टेलीफोन नम्बर न हुआ, गोया किसी अफसर का टेस्टिमोनियल हो गया जो वक्त-ज़रूरत काम आता ।

(कॉलबेल फिर बजती है ।)

मालती—देखो, घंटी बजी है । इस बार ज़रूर प्रोडक्शन-मैनेजर ही हैं ।

रामेश्वर—भगवान को भेजकर पहले मालूम कर लो । कहीं धोखा न खाना पड़े ।

मालती—भगवान...भगवान !

[भगवान इस बार, अन्दर दायीं ओर से नहीं, बायीं ओर से आगा हुआ आता है ।]

भगवान —जी ब्रीजी जी, एक कोट-पतलूनधारी सज्जन हैं । हाथ में चमड़े का बैग है ।

मालती —(घबराकर) ज़रूर प्रोडक्शन-मैनेजर हैं ! (बेताबी से) जा बुला ला जल्दी । (रामेश्वर से) तुम ज़रा मेरा जूड़ा ठीक कर दो । बार-बार ढीला हो जाता है । (रामेश्वर मुस्कराकर जूड़ा ठीक करने लगता है) बस बस, देखो वे आ रहे हैं ।

[कोट-पतलूनधारी एक सज्जन का प्रवेश । हाथ में चमड़े का पोर्टफोलियो है । अन्दर आते ही ठिठक जाते हैं । भगवान अन्दर चला जाता है ।]

आगन्तुक —नमस्ते । जी, श्रीमती मालती देवटिया आप ही हैं न ?

मालती —(घबराहट में साड़ी का पसलू ठीक करते और नमस्कार के लिए हाथ उठाते हुए) जी हाँ । आप.....

आगन्तुक —जी, मैं नवजोती.....

मालती—(बात काटकर) मैं समझ गयी । आइए, बैठिए । ये हैं मेरे पति रामेश्वर देवटिया । 'मातृभूमि' में सर्कुलेशन-मैनेजर हैं ।

आगन्तुक—नमस्ते । (बैठता है) बहुत खुशी हुई आप से मिलकर ।
रामेश्वर—मुझे भी बहुत खुशी हुई ।

मालती—ज़रा आप भगवान से कह कह दीजिएगा । चाय यहीं ले आ ।

रामेश्वर—हाँ हाँ । अभी लो ।

(अन्दर चला जाता है ।)

आगन्तुक—अजी रहने दीजिये । तकलीफ़ क्यों करती हैं ?

मालती—इसमें तकलीफ़ की क्या बात है ? यह तो चाय का ही टाइम है । वैसे आपको कोई आपत्ति तो नहीं है ? चाय पीते हैं न ?

आगन्तुक—बहुत । हमारा तो काम ही ऐसा है कि चाय का सहारा लेना पड़ता है ।

मालती—जी हाँ, आपको डे-नाइट वर्क जो करना पड़ता है ।

आगन्तुक—(हँसता-सा) जी हाँ, जिन्दा रहने के लिए करना ही पड़ता है ।

मालती—और देखिए, लोग समझते हैं कि आपकी लाइन में लोग हजारों लाखों कमाते हैं । यह कोई नहीं देखता कि उसके पीछे कितनी कड़ी मेहनत छिपी रहती है ।

आगन्तुक—बात यह है जी, लोग दूसरों के काम को बहुत अच्छा और आसान समझते हैं ।

मालती—जी यही बात है, ? गो मैं ऐसा नहीं समझती । लीजिए चाय आ गयी...हाँ, यहीं रख दो ।

[भगवान चाय तथा खाने का सामान एक ट्रे में लेकर प्रवेश करता है और ट्रे को छोटी मेज़ पर रख, अन्दर जाता है । मालती चाय बनाना आरम्भ करती है ।]

आगन्तुक—सुना है मिसेज देवटिया, आप अभिनय बहुत अच्छा करती हैं ।

मालती—(शरमाती हुई) अजी कहाँ ? बस यूँ ही, मामूली सा... लीजिए चाय लीजिए ।

आगन्तुक—(चाय का प्याला लेते हुए) धन्यवाद ! मिसेज कांतावाला आपकी बहुत प्रशंसा करती थीं ।

मालती—(कुछ आश्चर्य से) आप भी मिसेज कांतावाला को जानते हैं ?

आगन्तुक—(आश्चर्य) क्यों, मुझे आपसे मिलने के लिए...

मालती—(बात काटकर) ओह, मैं समझ गयी...मिसेज कांतावाला की बहुत मेहरबानी है मुझ पर । यह सब जो हो रहा, उन्ही की कृपा है ।

आगन्तुक—जी हाँ ।

मालती—देखिए, मुझे अच्छी एक्टिंग के लिए सबसे पहला मंडल मिसेज कांतावाला ने ही दिया था । उन्हें मेरी एक्टिंग बहुत पसंद आयी थी ।

आगन्तुक—(हँसी का लहजा) ओह । कौन-सा नाटक था ?

मालती—गोगोल के एक नाटक का हिन्दी अनुवाद था—‘शाह-बादशाह’ । हिन्दी में अच्छे नाटक हैं ही कहाँ ?

आगन्तुक—जी हाँ...कहाँ हुआ था यह ?

मालती—दामोदर हाल परेल में । देखिए, शायद उसका कोई स्टिल मेरे पास होगा । अभी दिखाती हूँ आपको ।.....

(जाती है और छोटी मेज से एक स्टिल निकालती है ।)

मालती—(आती हुई) जी यह देखिए । मैं मेयर की लड़की बनी हुई हूँ ।

आगन्तुक—(प्रशंसात्मक स्वर में) जी, बहुत अच्छा है । आपकी ड्रस

तो उन्होंने विदेशी रखी है।

[रामेश्वर अन्दर से आता है और राइटिंग-टेबल के निकट बैठ जाता है।]

मालती—मेरी नहीं, सारी कास्ट की ड्रेस उन्होंने विदेशी रखी है। हिन्दुस्तानी ड्रेस में भी मेरे फोटोग्राफ्स हैं...(ऊँची आवाज़ में रामेश्वर से) ज़रा देखना जी, आज सुबह जो फोटो आये हैं, वह वहीं छोटी मेज़ पर रखे हुए हैं न ?

रामेश्वर—(दूर से) देखता हूँ...हाँ, यहीं रखे हैं।

मालती—ज़रा इधर दे देना...(धीमी आवाज़ में आगन्तुक से) अभी तीन-चार दिन पहले ही खिचवाये हैं—स्टूडियो शां-ग्रीला में।

रामेश्वर—यह लो !

(लिफाफ़ा मेज़ पर रख देता है।)

मालती—(उत्साह भरे स्वर में) जी यह देखिए—तीनों पोज़ हैं—फ़्रण्ट, प्रोफ़ाइल और फ़ुल फ़िगर।

आगन्तुक—(प्रशंसात्मक स्वर में) जी बहुत अच्छे हैं...बहुत ही अच्छे हैं। सच मानिए मिसेज़ देवटिया, मैं भूठी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ।

मालती—...! धन्यवाद आपका क्या ख़याल है ? मेरा फ़ेस, फ़ोटोजेनिक है या नहीं ?

आगन्तुक—(हिचकिचाहट के साथ) अब देखिए, मैं इस सिलसिले में क्या कह सकता हूँ ? यह तो.....

मालती—(बात काटकर) मैं समझ रही हूँ। पर तब भी...(टोन बदलकर) अरे आपने चिवड़ा तो लिया ही नहीं ? लीजिए न। बिलकुल ताज़ा है।

आगन्तुक—धन्यवाद ! इतना खा लिया है कि अब तो बिलकुल भी गुंजाइश नहीं रही है।

(लेकिन खाये निरन्तर जा रहे हैं ।)

मालती—अर्जी क्या खाया है आपने ? सारी प्लेटें ज्यों-की-न्त्यों रखे हैं ।

(हालाँकि प्लेटें लगभग खाली हो चली हैं ।)

आगन्तुक—(हँसने का अभिनय) नहीं जी, बहुत हो गया है । (रुमाल से मुँह पोंछकर) मेरा खयाल है अब उस सिलसिले में भी कुछ बात कर ली जाय जिसके लिए मैं यहाँ आया हूँ

साजती—(प्रसन्न स्वर में) ओह ! अवश्य !...आप कॉन्ट्रेक्ट-फॉर्म तो अपने साथ नहीं लाये होंगे !

आगन्तुक—(सोचता हुआ) कान्ट्रेक्ट फॉर्म ?...ओह आपका मतलब शायद प्रपोज़ल फॉर्म से है । वह तो मैं लाया हूँ । बैग में है । हमारा प्रॉस्पैक्टस तो आपने नहीं देखा होगा ।

मालती—उसे देखने का सौभाग्य तो अभी प्राप्त नहीं हुआ ।

आगन्तुक—मैं अभी दिखाता हूँ । (बैग खोलने को हाथ बढ़ाता है, सहसा रुककर) वैसे एक बात पूछना चाहता था । दस हजार के लिए तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी !

मालती—(चौंककर) दस हजार ?

आगन्तुक—जी, दस हजार तो कोई बहुत बड़ी रकम नहीं है । और फिर आपकी...आई मीन पोज़ीशन को देखते हुए...

मालती—(प्रसन्न स्वर में) नहीं, अगर आप इसे ठीक समझते हैं, तब मैं क्या कह सकती हूँ ?

आगन्तुक—साहब, मेरा तो खयाल है कि कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिए !

मालती—चलिए, आप ही की बात मान ली ।

आगन्तुक—और टाइम कितना रखा जाय—दस साल ?

मालती—(चौंककर) दस साल !

आगन्तुक—क्यों ? क्या दस साल बहुत कम हैं ? पर टाइम में क्या खा है ?...आई...मीन पन्द्रह, बीस या लाइफ़ लाँग कर देंगे इसे.....

मालती—(चौंककर) लाइफ़ लाँग ?...मालूम होता है आप लोगों की बहुत बड़ी-बड़ी योजनाएँ हैं ।

आगन्तुक—(हँसकर) जी हाँ । दूसरी कम्पनियों की अपेक्षा हमारी योजनाएँ बड़ी ही हैं । लाइफ़ लाँग प्रपोज़ल के मिलसिले में मैं आपसे एक आवश्यक बात पूछना चाहता था, यदि आप कुछ...आई मीन...माइड न करें ।

मालती--हाँ हाँ, पूछिए न !

आगन्तुक—देखिए, सभ्य समाज में एक महिला से इस प्रकार का प्रश्न करना...आई मीन...इडीसेंसी समझी जायगी, मगर ज़रूरत देखते हुए मजबूर हूँ । पूछना ही पड़ रहा है.....

मालती—नहीं-नहीं, आप सकोच मत कीजिए । पूछिए न.....

आगन्तुक—जी, आपका डेट आफ़ बर्थ यानी जन्म-तिथि क्या है ?...मेरा मतलब है आपकी उम्र इस समय कितनी है ?

मालती--(शरमाती हुई) देखिए, मेरी जन्मपत्री तो खो गयी है, इसलिए सही तारीख़ या सन् बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है । हाँ, मेरे हाई स्कूल सार्टिफ़िकेट में मेरी जन्म-तिथि १६ अक्टूबर १९२६ लिखी हुई है, जो मेरे विचार से ठीक है.....

आगन्तुक—यानी आपकी उम्र इस समय.....

(टेलीफ़ोन की घन्टी बजती है ।)

मालती—(ऊँची आवाज़ से) ज़रा देखिएगा जी, किसका फ़ोन है ?

रामेश्वर—(स्वर में थोड़ा व्यंग्य है) वही कर रहा हूँ साहब...

(पृष्ठभूमि में रिसीवर उठाकर) हैलो...जी...यह ६६१०० है...

मैं रामेश्वर देवटिया बोल रहा हूँ...जी हाँ...अच्छा...लेकिन

वो तो...मगर यहाँ तो...

मालती—हाँ तो आप क्या कह रहे थे ?

आगन्तुक—मैं कह रहा था कि आपकी उम्र पच्चीस साल सात माह बैठती है। इसके अनुसार आपके लिए यह अच्छा होगा कि आप...

रामेश्वर—(टेलीफोन रखकर, ऊँची आवाज़ में) मालती !

मालती—किसका फ़ोन है ?

रामेश्वर—(ऊँची आवाज़ में) बताता हूँ। इधर आओ !

मालती—(धीमे से) ज़रा एक मिनट मुझे माफ़ कीजिएगा।

(रामेश्वर के निकट जाती है।)

आगन्तुक—हाँ हाँ अवश्य।

(चिबड़े की प्लेट की ओर हाथ बढ़ाता है।)

मालती—(रामेश्वर के निकट) क्या बात है ? किसका फ़ोन था ?

रामेश्वर—नवजोती फ़िल्म कम्पनी के प्रोडक्शन-मैनेजर का !

मालती—(साश्चर्य) नवजोती के प्रोडक्शन-मैनेजर का ! लेकिन यह.....

रामेश्वर—पहले पूरी बात तो सुनो। उसने फ़ोन पर कहा है कि उसे दिये हुए टाइम पर न पहुँच पाने का बहुत अफ़सोस है। उसे इस बात का भी अफ़सोस है कि वह कभी यहाँ न आ सकेगा क्योंकि कुछ मजबूरियाँ ही ऐसी हो गयी हैं। सेठ बुलाकीदास दामोदरमल को शेयर बाज़ार में ज़बरदस्त घाटा पड़ा है। वो दीवालिये हो गये हैं और फ़िल्म तो क्या, बीबी-बच्चों को भी फ़र्नांस करने लायक नहीं रहे। वह फ़िल्म और फ़िल्म कम्पनी सब ठप्प हो गयी है।

मालती—(आवेश में) यह ग़लत है...ऐसा कैसे हो सकता है ?...

किसी ने हमारे साथ मज़ाक किया है।.....

रामेश्वर—मज़ाक कौन करेगा ? किसे ऐसी ज़रूरत पड़ी है ?

मालती—लेकिन...लेकिन नवजोती के प्रोडक्शन मैनेजर तो ये बैठे हैं।

रामेश्वर—इनकी शकल पर लिखा तो है नहीं।

मालती—तो...तो ये साहब कौन हैं ?

रामेश्वर—पूछ लो इन्हीं से।

(मालती आगन्तुक के निकट आती है ।)

मालती—(आगन्तुक के निकट) क्यों साहब, क्या आप नवजोती फ़िल्म कम्पनी के प्रोडक्शन-मैनेजर नहीं हैं ?

आगन्तुक—(साश्चर्य) नवजोती फ़िल्म कम्पनी ?...(प्लेट हाथ में ही लिये खड़ा हो जाता है) जी नहीं। मैं नवजोती इंश्योरेन्स कम्पनी का एजेंट हूँ। मिसेज़ कान्तावाला ने मुझे आपकी इंश्योरेन्स के लिए भेजा था।

मालती—(सक्रोध) आपने पहले ही क्यों नहीं कहा !

आगन्तुक—आपने कहने का मौका ही कहाँ दिया !

मालती—आपको मौका निकालना चाहिए था।

आगन्तुक—मैंने...आई मीन...कोशिश तो बहुत की थी...मगर...

मालती—(बात काटकर) मगर-वगर कुछ नहीं साहब। आप ठीक बात तो कर नहीं रहे हैं, आई मीन, आई मीन करते जा रहे हैं।

आप को सब से पहले अपना कार्ड देना चाहिए था।

आगन्तुक—मेरे कार्ड छुपने गये हुए हैं। नहीं मैं एक की जगह दो-दो कार्ड पेश करता। वही एक मजबूरी हो गयी।

(प्लेट मेज़ पर रख देता है ।)

मालती—आपकी मजबूरी ने मुझे कितनी बड़ी ग़लतफ़हमी में डाल दिया।

आगन्तुक—इसके लिए मुझे अफ़सोस है। (कुछ रुककर इधर-उधर देखते हुए) अच्छा जी, मुझे अब आशा दीजिए। काफ़ी देर हो

गयी है...मैं फिर आऊँगा । अच्छा जी नमस्ते...नमस्ते ।
 रामेश्वर—नमस्ते ।

[आगन्तुक अपना बैग उठाकर प्रस्थान करता है । उसके चेहरे पर मुस्कराहट है । मालती हताश भाव से सोफे पर धम्म से गिर पड़ती है ।]

मालती—(स्वर में थकान और निराशा है) ओह भगवान !.....

(भगवान अन्दर से भागा-भागा आता है ।)

भगवान—(निकट आकर) क्या लाऊँ बीबी जी !

मालती—(जैसे शिकंजे में कसी जा रही हो) मेरा सिर !

रामेश्वर—(मुस्कराकर) भगवान, तुम्हारी बीबी जी थक गयी हैं ।
 चाय पिलाने में इतनी मगन रहीं कि खुद ढंग से एक प्याला भी
 नहीं पी सकीं । जाओ भागकर टी-पाट में थोड़ा पानी और ले
 आओ ।

भगवान—जी बहुत अच्छा !

(टी-पाट उठाकर भाग जाता है ।)

मालती—देखिए, मुझे तंग न कीजिए । अपने हाल पर छोड़ दीजिए
 मुझे ।

(उसी तरह मृगवत सोफे में धँसी रहती है ।)

रामेश्वर—मैं कहता हूँ, नवजोती की नयी हीरोइन तो तुम बन लीं,
 अब क्या 'माहीम आर्ट थियेटर' के चांस से भी हाथ धो लोगी ।
 'नवजोती' टूट गयी तो प्रभजोती बन जायगी, पर पब्लिक आई
 (Public eye) के सामने से अपने-आपको दूर कर लोगी तो...

मालती—(जैसे फिर ज़िन्दा हो उठती है) पर रायमोहन का फोन
 नम्बर तो मेरे पास है नहीं । अभिमन्यु जी रखे जा रहे थे पर...

रामेश्वर—नम्बर की तुम चिन्ता न करो, इनक्वाइरी से पूछ लेते हैं ।

मालती—उन्होंने कम्पनी बदल ली है, जाने कौन-सी कम्पनी है ? मैंने

क्यों न अभिमन्यु जी से फोन नम्बर ले लिया !

रामेश्वर—(जो इस बीच में सोच रहा है, चुटकी बजाकर) मैं कहता हूँ मिसेज़ कान्तावाला के यहाँ क्यों न चलें । वहीं से रायमोहन को फोन कर देंगे ।

मालती—यह ठीक है चलो कान्तावाला के यहाँ.....

(एकदम उठ पड़ती है और रामेश्वर का हाथ खींचती है ।)

रामेश्वर—(उठता हुआ) पर चाय का एक प्याला तो पी लो ।

मालती—(उसे खींचते हुए) छोड़ो चाय । मैं चाहती हूँ कि अभिमन्यु जी के वहाँ पहुँचने से पहले मैं उन्हें अपनी स्वीकृति दे दूँ । कहुँगी कि मैंने अभिमन्यु जी को इनकार कर दिया था, पर रंग-मंच का मोह मुझे नहीं छोड़ता.....

रामेश्वर—(मालती की गिरफ्त में खिंचते हुए) तुम्हारा जूड़ा ढीला हो रहा है ।

मालती—चलो चलो, कस जायगा जूड़ा ।

[उसे खींचती हुई निकल जाती है, भगवान टी-पाट लिये हुए आता है और दरवाज़े में रुक जाता है ।]

भगवान—(अपने-आप से) बीबी जी किधर गयीं (आवाज़ देता हुआ आगे बढ़ता है ।) बीबी जी...बीबी जी.....

(पर्दा गिरता है ।)

सत्य-किरण



कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

पात्र

आचार्य
मिट्ठू लाल
खगेश
जीरासिंह
रामगरीब
करुणा देवी

[डाक्टर आचार्य (वैज्ञानिक) की प्रयोगशाला का बाहरी कमरा । कमरे में दो दरवाज़े हैं । दोनों दरवाज़ों पर रंगीन पर्दे पड़े हैं । दरवाज़ों के बीच दीवार में एक खिड़की है । इस खिड़की से एक काँच का गोला दिखायी देता है । यह गोला काँच की नली से जुड़ा है । काँच का गोला तथा उससे जुड़ी नली के अतिरिक्त खिड़की से और कुछ नहीं दिखायी देता । एक काला पर्दा इस रहस्यात्मकता का कारण है, जो इन काँच की चीज़ों के पीछे लगा दिखायी देता है । कमरे की दीवारों पर विभिन्न तत्वों का सप्तरंजन (Spectrum) बतलाने वाले बड़े-बड़े चित्र लगे हैं । खिड़की से हटकर कमरे के बीच पाँच-छः कुर्सियाँ पड़ी हैं । एक कुर्सी पर रामगरीब (नेता) दूसरी पर खगेश (साहित्यिक) बैठे हैं, तीसरी कुर्सी खाली है और चौथी पर करुणा देवी (समाज सेविका) हैं । बाकी कुर्सियाँ भी खाली हैं । ज़ीरासिंह (रिटायर्ड पुलिस अधिकारी) दीवारों पर लगे चित्रों को घूम-घूमकर देख रहे हैं । करुणा देवी की कुर्सी पकड़े डाक्टर आचार्य खड़े हैं । रामगरीब की ओर कुछ हटकर मिट्ठूलाल (डा०

आचार्य का सहकारी) डाक्टर आचार्य के लिए आदेशों के लिए उत्सुक खड़ा है ।]

आचार्य—(गम्भीरता से) आज मैंने आप लोगों को यहाँ एक विशेष कारण-वश निमंत्रण दिया है । यों तो मैं लोगों से बहुत कम मिलता-बोलता हूँ, क्योंकि इसमें भी समय और शक्ति लगती है । (रुककर) मैं अपना सारा समय, सारी शक्ति अपने प्रयोग को ही देना चाहता हूँ । पर आज.....

खगेश—(बीच में) अहा, अलौकिक है आपकी लगन ! यह लगन एक महान और अनूठा पागलपन है । मैं इस अनूठे पागलपन की महानता स्वीकार करता हूँ । (रुककर) वास्तव में साहित्य भी एक विशिष्ट पागलपन का उद्गार मात्र है ।

रामगरीब—(तेज़ी से) होगा । पर राजनीति चीज़ ही और है । हर कदम सोच-समझकर रखना होता है । साहब, एक कदम भी डगमगाया तो दुनिया डगमगा जाती है । खगेश जी, साहित्य में पागलपन ज्यों-का-त्यों चल सकता है, पर राजनीति में तो पागलपन को समझदारी मानकर अपनाया जाता है ।

मिट्ठू—(आचार्य की मुद्रा देखकर) आप लोग पहले डाक्टर साहब को अपनी बात कह लेने दीजिए ।

करुणा—(मिट्ठू की बात अनसुनी कर) रामगरीब जी, यदि दिमाग से तौलकर देखे तो आपको मालूम होगा कि राजनीति और साहित्य से बड़ी चीज़ है समाज-सेवा । सेवा चाहे पागलपन में ही क्यों न की जाय, है वह सेवा ही । (घूमकर) क्यों सिंह साहब, आपकी या राय है ?

सिंह—(चित्रों की ओर से घूमते हुए, कुछ कड़े स्वर में) देवी जी, पहले डाक्टर साहब को अपनी बात कहने दीजिए । डाक्टर साहब, आप अपनी बात कहिए !

आचर्च —जी, मेरी बात ही आप लोगों को सुनना चाहिए ।

सिंह —(फिर चित्रों की ओर घूमते हुए) आप अपनी बात शुरू कीजिए !

करुणा—(बात सम्हालते हुए) जरूर शुरू कीजिए । (खगेश जी की ओर झुककर) खगेश जी, हमें आचार्य जी की नयी खोज में जनहित खोजना है ।

आचार्य—मिट्ठूलाल मेरी बात कहेगा । मिट्ठूलाल समझाना शुरू करो !

मिट्ठू—(आस्तीन सम्हालकर खिड़की के पास आते हुए) आज डाक्टर साहब अपनी नयी और युगान्तरकारी खोज 'सत्य-किरण' से आप लोगों का परिचय करायेंगे । सत्य-किरण.....

आचार्य—(बीच में) आप लोग इसे 'ट्रुथ' रे (Truth-ray) भी कह सकते हैं ।

खगेश —(भावुकता का अभिनय करते हुए) सत्य-किरण ! क्या तात्पर्य है ?

सिंह—(चित्रों की ओर मुँह किये) ज़रा सी चीज़ है । सत्य-किरण... याने जो सच में किरण हो ।

मिट्ठू—जी...मैं समझाता हूँ । जब आदमी का शरीर 'एक्स'-रे (X-ray) के सामने रखा जाता है तो उसका सारा दिखावा गायब हो जाता है और हमें उसका अस्थिपज्जर दिखाई देने लगता है । (मिट्ठू आचार्य की ओर देखता है और आचार्य सिर हिलाकर स्वीकृति देते हैं ।) तो इसी प्रकार एक अलौकिक शक्ति इस सत्य-किरण में है.....

करुणा—कौन सी शक्ति है इसमें ? सिंह साहब सुनिए !

रामगरीब—(विरोध करते हुए) पर डाक्टर साहब, आपको ये चीज़ें तो प्रेस कान्फ़रेन्स में बतलानी चाहिएँ ।

सिंह—(धूमते हुए) हम लोग किसी प्रेस वाले से कम हैं ! (बैठकर) हमें बुलाकर आपने ठीक ही किया है ।

आचार्य—रामगरीब जी, मैं प्रेस कान्फरेन्स को मामूली चीजें समझता हूँ । प्रेस में झूठ को सच और सच को झूठ बताने के लिए ही मशीनें चलती हैं । यही नहीं, आजकल प्रेस-रिपोर्टर वे बनते हैं, जिन्हें और कोई काम नहीं मिलता । यही सब सोचकर मैंने आप लोगों को बुलाना ठीक समझा ।

खगेश—(गद्गद् होकर) आचार्य जी, आप वास्तव में धन्य हैं । आपने हम लोगों को बुलाकर अपनी अपूर्व बुद्धि का परिचय दिया है । रामगरीब जी, आचार्य दूरदर्शी हैं । (डाक्टर की ओर मुककर) आचार्य, आप अपनी बात कहिए ।

आचार्य—मिट्ठू कंटीन्यू ।

मिट्ठू—सत्य-किरण में एक दैवी शक्ति है । जिस मनुष्य का मस्तिष्क उस किरण के मार्ग में रख दिया जाता है, उसके सारे छल-कपट दूर हो जाते हैं, वह मनुष्य सत्य बोलने लगता है ।

खगेश—इसका प्रमाण ।

सिंह—गवाही पेश कीजिए ।

मिट्ठू—आप लोग ही इसका प्रमाण बन सकते हैं और गवाही दे सकते हैं ।

करुणा—(घबराकर) जी नहीं, माफ़ कीजिए । (सम्हालते हुए) मुझे तो इसका प्रमाण नहीं बना । शायद रामगरीब जी तैयार हों ।

रामगरीब—(चौंककर) मैं...हैं...हैं...डाक्टर साहब, दिमाग तो कवियों का परीक्षा के लायक होता है ।

खगेश—(घबराहट छिपाते हुए) मैं साहित्यिक होने के नाते, विज्ञान से अपने-आपको पृथक् ही रखना चाहता हूँ । इसके लिए तो जीरासिंह जी जैसे साहसी आदमी का मस्तिष्क ठीक होगा ।

सिंह—(हँसने की चेष्टा करते हुए) मैंने पैंतीस साल पुलिस में नौकरी की है। पर दिमाग से मैंने बहुत कम काम लिया है। पता नहीं आज वह कुछ मतलब का है भी या नहीं।

आचार्य—आप लोग अपने जीवन का सत्य छिपाना चाहते हैं, तभी आप डर रहे हैं।

करुणा—(पसीना पोंछते हुए) जी...जी...ऐसी बात नहीं। सारा नगर मुझे जानता है। बच्चा-बच्चा मेरी सेवाओं की कहानी कहता है। जनता की सेवा करने के लिए मैंने स्वयं के सुख को ठुकरा दिया है। सड़कें और नालियाँ साफ़ करना, अपदों को पढ़ाना, बीमारों की सेवा करना तो मेरी दिनचर्या है। पर (अटकते हुए) पर मामला विज्ञान का है, इसलिए कुछ डर मालूम होता है।

रामगरीब—(खौंसकर) जी यही बात है। वरना हमारे जीवन के सत्य में तो कुछ ऐसा है कि किसी भी नौजवान को जोश दिलाने के लिए काफ़ी है। क्यों जीरासिंह जी ! आप तो मुझे बहुत दिनों से जानते हैं। (शीघ्रता से) मैं भी आपको जानता हूँ। डाक्टर साहब पुलिस में जीरासिंह जी जैसा देशभक्त मैंने कभी नहीं देखा।

सिंह—रामगरीब जी, आप तो शर्मिन्दा कर रहे हैं। (रुककर) डाक्टर साहब अपनी नौकरी के दिनों में हर मिनट मुझे यह खयाल रहा करता था कि पहले मैं हिन्दुस्तानी हूँ...बाद में अंगरेजों का नौकर। बस इसी खयाल ने मुझे गिरने से बचाया है। और.....

खगेश—(बीच में) मेरे विषय में भी यह सत्य है। आचार्य, हमारी जीवनगाथाएँ इतिहास का निर्माण करेंगी। विश्वास कीजिए, हमारा जीवन अपने आदर्शों के कारण भारत की भावी पौध का सुचारु-रूप से मार्ग-दर्शन कर सकता है।

आचार्य—फिर तो आप लोगों को अपनी खोच का प्रमाण बनाकर मुझे खुशी होगी। (रुककर) मिट्टू प्रोसीड.....

मिट्टू—सत्य-किरण की सत्यता परखने के लिए उसका प्रयोग कई प्राणियों पर किया गया। उन प्राणियों के हाव-भाव बतला रहे थे कि वे भी अपने जीवन का सत्य कहना चाहते हैं, पर न बोल सकने के कारण हमें वे कुछ संतोष न दे सके। प्रयोगों में जो दूसरी महत्वपूर्ण बात देखी गयी, यह यह थी कि उनके शरीर पर सत्य-किरण का कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा।

आचार्य—आप लोगों को डरना नहीं चाहिए। मिट्टू.....

मिट्टू—जी यही मैं कह रहा था।

रामगरीब—(उस्सुकता से) इसका असर कितनी देर रहता है ?

मिट्टू—जितनी देर आपका मस्तिष्क इसके मार्ग में रहेगा...बस उतनी ही देर।

खगेश—यह अत्यन्त सुन्दर है। अन्यथा इसके प्रभाव से जीवन बड़ा व्यथित हो जाता। (रुककर) करुणा देवी, आपको सहमत होना पड़ेगा कि हरेक के जीवन में कुछ ऐसे रहस्यमय क्षण होते हैं, जिनका उद्घाटन करने के बदले वह प्राण त्यागना उचित समझता है।

सिंह—(बीच में) जरूर होते हैं। पुलिस वाले की जिन्दगी में तो राज ही राज होते हैं।

करुणा—सभी के जीवन में ऐसे क्षण होते हैं। (रुककर) मेरे ऐसे बहुत से रहस्य हैं जिन्हें करुणेश जी भी नहीं जानते।

आचार्य—करुणेश कौन ?

रामगरीब—(शीघ्रता से) करुणा देवी के पति। बहुत बड़े व्यापारी हैं (हँसकर) इनके पति होने के साथ-साथ वे करोड़-पति भी हैं।

खगेश—(गद्गद् होकर) अहा। रामगरीब जी यही पति कानया और मौलिक प्रयोग है।

आचार्य—(हँसने की कोशिश करते हुए) जोड़ी के नाम खूब मिलते हैं।

करुणा—जी बात ऐसी नहीं है। मेरा नाम करुणा है, इसलिए मुझसे विवाह करने के बाद उन्होंने अपना नाम बदलकर करुणेश कर लिया (शर्माकर) मुझे बड़ा प्यार करते हैं न !

मिट्ठू—(गर्व से) डाक्टर साहब अपनी प्रयोगशाला को भी ऐसा ही प्यार करते हैं ।

खगेश—अत्यन्त मनोसुखकारी ! आचार्य, आपकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। अतएव अब मैं आपकी प्रशंसा नहीं करूँगा ।

आचार्य—(कुछ चिढ़कर) मिट्ठू लाल.....

मिट्ठू—(खिड़की की ओर इशारा कर) आप लोग इधर देखिए । मैं पहले आप लोगों को सत्य-किरण के महान यंत्र के विषय में कुछ बता देना चाहता हूँ । (रामगरीब, करुणा देवी और खगेश अपनी-अपनी कुर्सी सरकाकर खिड़की की ओर देखने लगते हैं । ज़ीरासिंह अपनी कुर्सी से उठकर खिड़की के पास आ जाते हैं, डाक्टर अपना सिर हिलाकर मिट्ठू को इशारा करते हैं । मैं आप लोगों को इस यंत्र की प्रधान बातें बताऊँगी ।

खगेश—क्यों । विस्तार पूर्वक क्यों नहीं !

आचार्य—यह मेरी आज्ञा है । क्योंकि.....

सिंह—खगेश जी, हिन्दुस्तान के कवियों में न जाने कब सत्र आयेगा ।

रामगरीब—चुप भी रहिए खगेश जी । करुणा देवी साहित्यिकों की आदत होती है बीच-बीच में बोलने की । मुझे देखिए, मैं चुप हूँ ।

करुणा—(हँसकर) राजनीतिकों की चुप बड़ी भयानक होती है । बोलने पर तो उनके मन का पता चल जाता है ।

सिंह—करुणा देवी, मैं तो सूरत देखकर ही आदमी के मन का पता पा लेता हूँ । डाक्टर साहब आप अपनी बात कहिए ।

आचार्य—मैं आप लोगों के सामने उतनी ही बातें कहूँगा जितनी आप

समझ जायँ । आप जानते हैं यह विज्ञान का विषय है । विज्ञान पढ़ना और समझना हर एक के बस की बात नहीं । यदि मैं इसकी वैज्ञानिकता पर बोलने लगूँगा तो आप लोग घबरा जायेंगे ।

सिंह—डाक्टर साहब, अच्छे-अच्छे चोरो...लुटेरो का सामना किया है मैंने । घबराने की बात आप इन लोगों से कहिए ।

रामगरीब—(हँसी रोकने की कोशिश करते हुए) हम जानते हैं कि आप नहीं घबरायेंगे पर आपको हमारी घबराहट का खयाल तो रखना ही होगा । डाक्टर साहब, आप आगे बढ़िए ।

आचार्य—आप लोग संक्षेप में इतना समझ लीजिए कि (खिड़की की ओर इशारा कर) इसके पीछे दो प्रधान काँच की नलियाँ हैं । एक नली में एक्स-रे बनती है और दूसरी में गामा-रे ।

खगेश—(चौंकर) जी गामा.....।

आचार्य—जी हाँ, गामा-रे । ये दोनों ही दो प्रकार की किरणें हैं । ये दोनों किरणें फिर एक तीसरी नली में आती हैं । यहाँ विद्युत की सहायता से उनमें एक रासायनिक क्रिया होती है ।

करुणा—कौन-सी क्रिया ?

आचार्य—यह मैं नहीं बताऊँगा । यह मेरे इस प्रयोग का रहस्य है ।

मिट्ठू—और यदि आप बतायेंगे भी तो ये लोग नहीं समझेंगे ।

आचार्य—(बौटकर) मिट्ठू । (रुककर) एक्स-रे और गामा-रे की रासायनिक क्रिया के बाद सत्य-किरण बनती है और इस काँच के गोले से बाहर निकलती है । मिट्ठू तुम अन्दर स्विचबोर्ड के पास जाओ, जब मैं कहूँ तो ऑन करना (मिट्ठू का प्रस्थान) अब मैं आप लोगों को सत्य-किरण से परिचित कराऊँगा ।

खगेश—(बरे स्वर में) तो...तो...क्या सत्य-किरण के प्रभाव से मैं... मैं...सत्य बोल जाऊँगा ।

रामगरीब—(सगद्गते हुए) खगेश जी, सत्य बोल जायेंगे हम लोग ?

करुणा देवी आपके जीवन का रहस्य और सत्य.....

करुणा—(चौंकर) मेरे जीवन का सत्य । (रुककर) सिंह साहब, आप तो पुलिस की नौकरी करते रहे हैं...। आपके जीवन के सारे रहस्य.....

सिंह—(अटकते हुए) रहस्य ! नहीं...नहीं...। रहस्य था ही क्या ? पुलिस वालों की बातें तो सभी जानते हैं । फिर भी...उसे दोहराना ...क्या.....

आचार्य—आप लोग डरिए नहीं । किसी के जीवन का सत्य इस प्रयोग-शाला के बाहर नहीं जायेगा । (रुककर) आप शायद नहीं जानते कि वैज्ञानिक अपने प्रयोग के फल पहले गुप्त ही रखते हैं ।

करुणा—पहले गुप्त रखते हैं...और बाद में.....

आचार्य—(हँसकर) कुछ फल हमेशा गुप्त रखे जाते हैं । लोगों के सामने तो प्रयोग की सफलता और विशेषता की बातें ही आती हैं । अच्छा अब आप लोग तैयार हो जाइए । इस गोले में प्रकाश होते ही सत्य-किरण इस ओर आने लगेगी और (कुर्सियों के आस-पास संकेत कर) यह सारी जगह उससे प्रभावित हो जायेगी ! (रुककर) तैयार ! (पुकारकर) मिट्ठू, स्विच आन करो ! (भीतर किसी मशीन के चलने की आवाज़ आती है । कुछ क्षणों बाद कौच के गोले में प्रकाश दिखायी देता है । आचार्य खिड़की के पास से हटकर दूर खड़े हो जाते हैं ।) यह देखिए आ गयी सत्य किरण । (घड़ी को कुछ क्षण देखकर) बस अब आप लोगों पर इसका प्रभाव हो गया । आप लोग अब केवल सच बोलेंगे !

रामगरीब—डाक्टर साहब, आप भी इधर आइए न । हम लोगों में शामिल हो जाइए । हम लोग भी आपके जीवन का सत्य जान जायेंगे । आज की दुनिया में वैज्ञानिक भी बहुत बड़े आदमी माने जाते हैं ।

आचार्य—(कुछ घबराकर) कुछ देर ठहर जाइए । अभी मुझे अपने यंत्रों का भी ध्यान रखना है ।

सिंह—(हँसकर), डाक्टर साहब आप उड़ रहे हैं । मैंने पुलिस में पैंतीस साल नौकरी की है । मिल-जुलकर सब-इन्स्पेक्टर हुआ था । पर फिर अपनी ही चालाकी से डी० एस० पी० होकर रिटायर हुआ हूँ । मुझसे आप नहीं उड़ पायेंगे ।

खगेश—आचार्य आपका सहयोगी मिट्टू लाल पर्याप्त निपुण है । हम लोगों को उस पर विश्वास है ।

आचार्य—जी...पर...!

करुणा—आप अपने जीवन का सत्य हम से छिपाना चाहते हैं, मुझे शक हो रहा है ।

रामगरीब—शक की तो बात है ही ।

सिंह—(हँसकर) देखिए डाक्टर साहब, एक कहावत है कि चोर-चोर मौसेरे भाई । अब आ जाइए !

आचार्य—(कुर्सियों की ओर आते हुए) जी...बात...ऐसी नहीं...। जब आप सभी मेरे सामने सच बोलेंगे तो मुझे आपके सामने सच बोलने में क्या डर हो सकता है । लीजिए मैं आ गया ।

[भीतर से आती मशीन की आवाज़ कुछ तेज़ होती है, उसके साथ ही प्रकाश कुछ-कुछ तेज़ हो जाता है । कुछ देर बाद आवाज़ धीमी हो जाती है ।]

खगेश—आचार्य जी, सत्य या असत्य का भय वहाँ होता है जहाँ प्रेम का अभाव है । जहाँ प्रेम ही सब कुछ है, वहाँ हर बात प्रेम के अनुकूल सत्य या असत्य बन जाती है ।

करुणा—खगेश जी मैं प्रेम और उसके नाटकों पर बिल्कुल विश्वास नहीं करती ।

खगेश—पर आपने ही कहा था कि करुणेश जी आपको बहुत प्रेम

करते हैं। जीरासिंह जी...यह कहा था न करुणा देवी ने ?

सिंह—हम सब इसके गवाह हैं।

करुणा—खगेश जी, मैंने प्रेम को सदा से मूर्खता माना है। करुणेश जी प्रेम का जितना नाटक करते हैं, उससे अधिक नाटक मैं करती हूँ।

रामगरीब—(आश्चर्य से) करुणेश जी प्रेम का नाटक करते हैं! आपने तो अभी यह कहा था कि आपके प्रेम के कारण उन्होंने अपना नाम करुणेश रख लिया है।

करुणा—पर अब तो कह रही हूँ कि दोनों ओर ही नाटक है। उनका प्रेम एक वेश्या से है, जिससे विवाह करने से वे डरते हैं। शहर में मेरी इज्जत है...मेरा नाम है, इसलिए उन्होंने मुझे अपनी पत्नी का पार्ट दिया। बस इससे अधिक और कुछ नहीं।

सिंह—अच्छा ! सेठ जी तो मुझसे अक्सर कहा करते हैं कि उन्हें अपने चरित्र पर नाज़ है। (हँसकर) पर आप तो कुछ और ही बता रही हैं।

खगेश—(उत्सुकता से) करुणा देवी अपने इस अभिनय की कुछ महत्वपूर्ण बातों पर और प्रकाश डालिए न !

करुणा—खगेश जी, करुणेश व्यापारी हैं। रात-दिन पैसे की हाय हाय। दमड़ी से चमड़ी का मोल-भाव ! जो फँसा उसका गला दबाने में वे नहीं चूकते। (रुककर) मैं तो जीवन के रसमय पक्ष पर विश्वास करती हूँ, साथ ही यह भी चाहती हूँ कि समाज में जो इज्जत है, वह भी बनी रहे। वर्तमान स्थिति में मेरी दोनों साधें पूरी हो जाती हैं।

रामगरीब—किस प्रकार ?

आचार्य—मैं इतनी देर से चुप था, पर मैं भी उत्सुक हो गया हूँ।

सिंह—(हँसने की कोशिश करते हुए) आपकी बातें विचित्र लग रही

हैं। आगे कहिए !

करुणा—धनी सेठ की पत्नी हैं, इसलिए जहाँ जाती हूँ, लोग सिर पर बैठाते हैं। (मुस्कराते हुए) समाज-सेवा का काम भी मैंने अपना मतलब सिद्ध करने के लिए शुरू किया है।

रामगरीब—समाज-सेवा से कौन-सा मतलब सिद्ध होता है ?

करुणा—समाज-सेवा के बहाने घूमने-फिरने और मिलने-जुलने की स्वतंत्रता मिली रहती है। (रुककर) खगेश जी, आपने पिछले दिनों मेरी प्रशंसा में जो कविता लिखी थी, वास्तव में उसमें सब-कुछ भूठ था।

खगेश—(शीघ्रता से) यह कविता मेरे नाम से छपी अवश्य थी, पर उसका रचयिता मैं नहीं हूँ। एक निर्धन पड़ोसी है मेरा, उसे दो रुपये देकर वे दो दर्जन पंक्तियाँ मैंने उससे ही लिखवायी थीं। (रुककर) देवी जी वह बड़ा विद्वान है।

रामगरीब—विद्वान गरीब तो होते ही हैं। लोग मुझे भी विद्वान समझते हैं, पर डाक्टर साहब, सच मानिए यदि मैं विद्वान होता तो शायद शहर की हवेलियाँ मेरी न होतीं।

सिंह—रामगरीब जी, आज-कल पैसा और कुर्सी देखकर आदमी को समझदार या बेवकूफ कहा जाता है। मेरी ही मिसाल लीजिए। जब तक सब-इन्स्पेक्टर था, सभी आफिसर बेवकूफ समझते थे। जिस दिन कतान हुआ, होशियारी का ठप्पा लग गया।

खगेश—जीरासिंह जी, आप सत्य कह रहे हैं। एक समय था जब कोई मुझसे बात करना भी उचित नहीं समझता था। जहाँ मेरी तीन-चार पुस्तकें प्रकाशित हुईं कि लोगों ने पलकों के पालने में बैठा लिया।

करुणा—खगेश जी, आपकी वे पुस्तकें कैसे निकली हैं ? उनमें तो कई कविताएँ होंगी।

खगेश—सब कविताओं के विषय में वही एक सत्य है। वही मेरे जीवन का सत्य भी है। (रुककर) पर मुझमें एक मौलिकता भी है। प्राचीनतम, अप्राप्य पांडुलिपियों तथा पत्र-पत्रिकाओं का मैंने संग्रह किया है। भिन्न-भिन्न पांडुलिपियों और पत्रिकाओं की भिन्न-भिन्न पंक्तियाँ मेरे प्रयत्न से एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं। ये एक स्थान पर जड़ी पंक्तियाँ एक नयी और मौलिक कविता का रूप ले लेती हैं।

आचार्य—कई पत्रों ने भी आपकी बड़ी तारीफ़ की है।

खगेश—मैंने अपनी चतुराई और चाटुकारी की सहायता से सम्पादकों से परिचय कर लिया है। एक सम्पादक के पुत्र का मैं अवैतनिक शिक्षक हूँ। दूसरे की पत्नी से राखी बँधवाकर...मैंने उसे अपनी भगनी बना लिया है। (रुककर) आचार्य वे समस्त लेख मैंने स्वयं लिखवाये थे।

करुणा—अच्छा ! यह मुझे नहीं मालूम था।

सिंह—तो अब नोट कर लीजिए।

रामगरीब—खगेश जी, आपकी एक पुस्तक प्रकाशित भी तो बड़ी सज्ज-धज से हुई थी।

खगेश—रामगरीब जी, उस पुस्तक के प्रकाशक मेरे ससुर हैं। अपने विवाह के समय दहेज के रूप में मैंने उस पुस्तक का प्रकाशन ही माँगा था। (कुछ झेंपकर) करुणा देवी इस सत्य के कारण मैं अपनी पत्नी पर अपने कवित्व का प्रभुत्व नहीं जमा पाता।

रामगरीब—पत्नी पर प्रभुत्व किस प्रकार जमाया जाये यह मुझसे पूछिए।

सिंह—(कुछ दुख से) बड़ी देर से बताया आपने। मेरी पत्नी तो मुझ पर अपना रौब जमा कर दुनियाँ से चली गयी।

आचार्य—रामगरीब जी, फिर भी आप सुना डालिये। हम लोगों के काम आयेगा।

रामगरीब—आप भी कुछ सुनाइए न ।

आचार्य—आपके बाद सुनाऊँगा । (मुस्कराकर) मैं नागरिक हूँ, नेता के पीछे रहूँगा ।

रामगरीब—(गला साफ़ कर) पत्नी पर प्रभुत्व जमाने के लिए एक ही मूलमंत्र है—सदा उससे झूठ बोलना (गम्भीरता से) पर झूठ भी हिम्मत से बोलना चाहिए । घबराये कि बात डगमगा गयी । (रुककर) मैं उसे मूर्ख समझता हूँ जो पत्नी से सच बोलता है । डाक्टर साहब, बिना झूठ बोले कोई भी अपनी पत्नी पर प्रभुत्व जमा ही नहीं पाता ।

खगेश—रामगरीब जी क्या जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी आप असत्य का आधार लेते हैं ?

रामगरीब—जी हाँ ! मेरा सारा करियर ही झूठ पर बना है । मैंने अभी कहा न कि मैं झूठ हिम्मत से बोलता हूँ । ऐसी हिम्मत से मैं झूठ बोलता हूँ कि दूसरा आदमी सच भी उस हिम्मत से नहीं बोल सकता ।

आचार्य—हिम्मत तो बड़ी चीज़ है । पर आप अपनी हिम्मत का कोई सबूत तो दीजिए ।

रामगरीब—मेरी हिम्मत का सबसे बड़ा सबूत तो मेरे कपड़े और मेरे विचार हैं । सच मानिए, मैंने न जाने कितनी पार्टियाँ ज्वाइन कीं और छोड़ीं । उन पार्टियों के अनुसार कपड़े और विचार बदले । (रुककर ऊँचे स्वर में) हिम्मत की बात तो यह कि एक पार्टी को छोड़ते ही, चौराहे पर खड़े होकर उसे जी भर गालियाँ दीं । डाक्टर साहब, गौर कीजिए, कल जिसकी तारीफ़ की, आज उसे ही हिम्मत से गाली दी (रुककर) बड़ी बात है न करुणा देवी ।

करुणा—बहुत बड़ी बात है । पर मेरे लिए नयी नहीं है । मैंने घर में पति को गालियाँ दी हैं, उनसे झगड़ा किया है और घर से बाहर

स्टेज पर पति-भक्ति पर लम्बे-लम्बे सारगर्भित भाषण दिये हैं ।
(हँसकर) दोनों चीजें एक साथ !

खगेश—(गद्गद् होकर) करुणा देवी, आपका यह साहस, रामगरीब जी के साहस से भी महान है ।

सिंह—(कुछ चिढ़कर) कवि जी, हमारे साहस को आप नहीं जानते । कितने चोरों और डाकुओं को पकड़ने के लिए हमें प्रमोशन मिले । हमारे साहस पर सब ने हमारी तारीफ़ की । और असल बात यह थी कि हम तो घर से बाहर ही नहीं निकले । हमारे सिपाहियों ने सारा काम किया । (दबे स्वर में) अब कहिए !

(सब की हँसी)

करुणा—यह साहस सबसे ऊँचा है । रामगरीब जी अब आप अपनी बात आगे बढ़ाएँ । हम लोग उत्सुक हैं ।

रामगरीब—करुणा देवी, आप जानती होंगी, मेरी नेतागिरी म्युनिसिपैलिटी के चुनाव से शुरू हुई थी । चुनाव के पूर्व वोट देने वालों से जितने वादे किये, चुनाव होते ही मैंने उन वादों को बिना संकोच भुला दिया । चुनाव के पहले खोद-खोदकर जिनसे पहचान निकाली (हँसकर) चुनाव के बाद, याद दिलाने पर भी उन्हें न पहचान पाया ।

आचार्य—क्या बात है ! (रुककर) रामगरीब जी, सुना है पहले आपकी हालत सब तरफ़ से बड़ी कमज़ोर थी ।

सिंह—आपने सुना था...हमने तो सब-कुछ देखा था । बड़ी कमज़ोर थी इनकी हालत ।

रामगरीब—(ज़ोर देते हुए) जी हाँ, बहुत ही कमज़ोर थी । और अब देखिए कैसा ज़ोर है । बात यह है डाक्टर साहब कि मैंने नेता बनने के बाद वही काम किये हैं जो आनरेरी याने अवैतनिक थे । मेरा तो अनुभव है कि अवैतनिक कामों में ही वेतन अधिक मिलता

है। मज्जे की बात तो यह है कि इस वेतन पर (हँसकर) इनकम-टैक्स भी नहीं लगता। (खगेश का खुला मुँह देखकर) खगेश जी, आपको आश्चर्य हो रहा है। मैं कहता हूँ कि यदि असामी पहचाना आ गया तो पैसा बहता हुआ घर में चला आता है।

खगेश—आपका कथन सत्य है। लोगों का कथन है कि साहित्यिक निर्धन होते हैं, पर मेरा कथन है कि वे साहित्यिक निर्धन होते हैं जिनके पास स्वार्थ-बुद्धि की कंगाली होती है। मैंने चाहे साहित्य को न समझा हो, साहित्य का अध्ययन भी न किया हो...पर साहित्यिक कहलाता तो हूँ। (रुककर) मैं निर्धन नहीं हूँ।

सिंह—वह तो मैं जानता हूँ। पुलिस की डायरी में। एक जगह नोट किया गया था कि आपके पास मोटर कैसे आ गयी, इसका पता चलाया जाय।

रामगरीब—जीरासिंह जी, खगेश जी उसके बाद ही मेरे पास आये थे। हम दोनों के प्रयत्न से वह नोट डायरी से काट दिया गया।

सिंह—मुझे मालूम है। मैंने ही उसे कटवाया था। पर खगेश जी वह मोटर आपके पास आयी कैसे ?

खगेश—करुणा देवी जानती हैं।

आचार्य—तो आप ही बताइए न करुणा देवी।

करुणा—खगेश जी को मोटर करुणेश जी ने भेंट की थी ! दस हजार रुपये उनके लिए कोई बड़ी चीज़ नहीं।

सिंह—पर इस भेंट का कोई सबब जरूर होगा। खगेश जी बताइए न।

खगेश—आपको याद होगा कि पारसाल करुणेश जी को उनकी वर्ष-गाँठ पर नगर के साहित्यिकों द्वारा एक अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट किया गया था। वह अभिनन्दन-ग्रंथ क्या है...करुणेश जी की भूठी प्रशंसा का पोथा। करुणा देवी जानती हैं। (रुककर) करुणेश जी की इच्छा से मैंने यह कार्य कराया था।

आचार्य—(शीघ्रता से) ओ, तो मोटर उस मेहनत का फल थी ।

(हँसकर) बड़ा जोर है, आपकी कलम में खगेश जी ।

करुणा—डाक्टर साहब, रामगरीब जी के भाषण भी बड़े जोरदार होते हैं । मैंने सुने हैं ।

रामगरीब—भाषण लिखने के लिए मैंने एक मुंशी रख छोड़ा है ।

मुझे भाषण वही समझाता है और वही रटाता है । यों मैंने दो-चार कलमघसीट भुखमरे और जमा लिये हैं । जहाँ दस का एक पत्ता भेजा कि बना हुआ भाषण चला आया । (रुककर) मुझे एक ही कष्ट करना होता है...उन्हें ठीक से रटने का । पर मैं अपना काम दिल लगाकर करता हूँ ! क्या मजाल कि कॉमा वगैरह तक की भूल हो जाय ।

खगेश—भाषण भी आप हिम्मत से ही देते होंगे ।

रामगरीब—पूरी हिम्मत से स्टेज पर चढ़ता हूँ । जब बोलता हूँ तो लोग उसे मेरा ही भाषण समझते हैं । पत्रकारों को जब-तब चाय पिलाता हूँ ताकि वे मेरे भाषण को अपने-अपने पत्रों में अच्छे स्थान पर छापें । बस !

आचार्य—आपकी बातें सुनकर मेरी इच्छा भी प्रेस वालों से मिलने की हो रही है । रामगरीब जी, यह तो मैंने देखा कि आन-कल लोग समाचार-पत्रों की बातों पर जल्दी भरोसा कर लेते हैं ।

खगेश—तभी तो हम लोग अपनी भावनाओं का व्यक्तीकरण समाचार-पत्रों के माध्यम से करते हैं । करुणा देवी आपका क्या विचार है ?

करुणा—पेपर में नाम छपवाने की कोशिश तो मैं भी करती हूँ, पर साथ-ही-साथ यह भी कोशिश करती हूँ कि अपना कोई ऐसा रहस्य पेपर में न छपने पाये जिससे अपने सामाजिक व्यापार में नुकसान हो ।

रामगरीब—मुँह की बात छीन ली आपने, ठीक उसी तरह.....

करुणा—(शीघ्रता से) जैसे आप लोगों के मुँह का कौर छीन लेते हैं।

(सब की हँसी, रामगरीब गम्भीर हो जाते हैं ।)

आचार्य—(बात बदलते हुए) रामगरीब जी कुछ दिनों पहले भिखारियों की समस्या पर पेपरों में आपका जो भाषण छपा था, वह मुझे बड़ा पसन्द आया था।

रामगरीब—(स्महलते हुए) मेरे मुंशी ने उस भाषण को तैयार करने के लिए न जाने कितनी पुस्तकें और बड़े-बड़े नेताओं के दर्जनों भाषण पढ़े थे। इसके बाद मुंशी ने उस भाषण को एक हफ्ते में लिखा था। (हँसकर) और मैंने (ज़ोर देकर) एक दिन में याद किया था। (रुककर) ऐसे ही भाषणों ने मुझे आगे बढ़ाया है। जीरासिंह जी, आपके बढ़ने का क्या कारण है... आपने बतलाया ही नहीं।

सिंह—मैं अर्ज कर चुका हूँ कि खुशामद का ही ज़ोर था जो मुझे यहाँ तक ले आया। जब मैं सब-इन्स्पेक्टर हुआ तब अपने साहबों के सामने मैंने अपने को कान्सटेबल से बड़ा नहीं समझा। साहब, वह अँगरेजों का जमाना था। उनके सामने इन चीज़ों की बड़ी क्रीम थी। मैं काम से ज़्यादा इन चीज़ों की फ़िकर करता था... और बढ़ता जाता था।

करुणा—एक दिन करुणेश जी कह रहे थे कि आप लोगों को बड़ा तंग करते थे।

सिंह—(हँसकर) तंग ! नहीं जी, मैं तो सरकार की बात मानता था। जब दो-चार-साथियों को मारता और गालियाँ देता था तो साहब पीठ ठोका करते थे। (रुककर) आप से क्या छिपाऊँ, सन् ४२ के आन्दोलन में मैंने आज़ादी का नाम तक लेने वालों को ऐसा दुरुस्त किया था कि आज भी उनकी हड्डियाँ कड़कती होंगी।

खगेश—च्च्च् यह तो कठोरता है !

सिंह—उन दिनों यही कर्तव्य समझा जाता था । अँगरेज़ सरकार को मैंने आन्दोलन की कितनी गुप्त बातें बतायी थीं । उन्हीं बातों के दम पर कितने लोग पकड़े गये ।

आचार्य—आपको इसमें क्या मिला था ?

सिंह—प्रमोशन । आन्दोलन ठंडा हुआ और मैं डी० एस० पी० हो गया ।

करुणा—नयी सरकार आने पर आपकी इज्जत घट गयी होगी ।

सिंह—जी नहीं । हमारी नयी सरकार के आने पर हमारी इज्जत और बढ़ गयी । (रुककर) इसका कारण रामगरीब जी, बतलायें । ये भी तो इज्जत बढ़ाने वालों में हैं ।

रामगरीब—बात यह थी करुणा देवी कि जीरासिंह जी जैसे पुलिस अधिकारी हम लोगों का सारा इतिहास जानते थे । यदि इन्हें दूर करते तो अपना सारा भंडाफोड़ होता । इसीलिए इन लोगों को गले लगाना ही पड़ा । (हँसकर) यही तो राजनीति है ।

खगेश—जीरासिंह जी, अब तो अवकाश प्राप्त कर चुके हैं आप । अब तो समय बड़ी कठिनाई से कटता होगा ।

सिंह—नहीं कवि जी, अब भी कहाँ आराम है । हमारी सरकार हम पर बड़ी खुश है । हम पर सरकार को भरोसा भी बहुत है । (रुककर कुछ ऐंठ से) अब भी हम पाँच-सात बड़ी कमेटियों के मेंबर हैं । अब इज्जत और बढ़ गयी है । (कुछ सोचते हुए) डाक्टर साहब एक चीज़ याद आयी ।

आचार्य—तो जरूर कहिए, यहाँ तो अपना ही राज्य है ।

सिंह—कुछ दिनों पहले, पेपर में जहाँ यह ख़बर छपी थी कि मैं पुलिस का विशेष अधिकारी बना दिया गया हूँ... उसी के नीचे यह भी छपा था कि आपके गुरु प्रयोगशाला में मरे पाये गये । ख़बर में था कि प्रयोग करते समय.....

आचार्य—(बीच में) वह खबर गलत थी !

सिंह—तो सच क्या था ?

आचार्य—वास्तव में सत्य किरण का आविष्कार उन्हीं का था । यदि वे जीवित रहते तो इस आविष्कार का सारा श्रेय उन्हीं को मिलता । पर मैं दुनिया को यह बताना चाहता था कि इसका आविष्कारक मैं हूँ । इसका सारा श्रेय मैं चाहता था, इसीलिए मैंने उन्हें अपने रास्ते से हटा दिया । (रुककर) मैंने उन्हें जहर दे दिया था ।

[इसी समय दरवाजे पर मिट्ठूलाल आकर ज़ोरों से हँसता है । सब लोग चौंककर उसी ओर देखने लगते हैं ।]

मिट्ठू—मैंने आप सबकी बातें बगल के कमरे से सुन ली । डाक्टर साहब ! आज मैं सारी चीज़ समझ गया ।

आचार्य—(डाँटकर) मिट्ठूलाल ।

मिट्ठू—अब आप की डाँट का मुझ पर कोई असर नहीं होगा । दुनिया में मैं आपकी वैज्ञानिकता का ढोल पीटूँगा । आपके साथ इन सब के गुण भी गाऊँगा ।

करुणा—(घबराकर) तुमने सारी बातें सुन ली हैं ?

मिट्ठू—जी । करुणेश जी का प्रेम, आपकी समाज सेवा । (हँसी, आचार्य उसकी ओर बढ़ते हैं ।) वहीं रुकिये डाक्टर साहब, मैं सब जान गया हूँ । खगेश जी का साहित्य, रामगरीब जी की नेतागिरी, जीरासिंह जी की ईमानदारी ! कल तक सारी दुनिया भी जान जायेगी डाक्टर साहब, नमस्ते...मैं चल दिया ।

(हँसी, प्रस्थान । उसकी हँसी नेपथ्य में कुछ देर सुनायी देती है ।)

रामगरीब—डाक्टर साहब, अब क्या होगा ?

खगेश—मैं अपने साहित्य पर एक मित्र से आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा रहा था...अब वह यों ही रह जायेगा ।

सिंह—मैं भी कई राष्ट्रीय समितियों का मेम्बर हूँ ।

करुणा—(घबराकर) डाक्टर साहब, कुछ कीजिए । हमें बचाइये ।

आचार्य—आप लोगों से अधिक मुझे अपनी चिन्ता है । (सोचते हुए)

मैं इस सत्य किरण के आविष्कार को संसार के सामने नहीं जाने दूँगा । सत्य किरण की सत्यता न कोई जानेगा और न कोई मिट्ठू की बातों पर भरोसा करेगा । मिट्ठूलाल की बातें सत्य किरण ही सत्य कर सकती है । पर सत्य किरण से अधिक महत्वपूर्ण हमारा जीवन है । आप लोग विश्वास रखिए...हम लोग दुनिया की आँखों से नहीं गिरेंगे ।

सब—आप धन्य हैं डाक्टर साहब !

[डाक्टर खिड़की से आती सत्य किरण को देखता है और सब डाक्टर की ओर देखते हैं । पदाँ धीरे-धीरे गिरता है ।]

— — —

बन्दी

•

जगदीशचन्द्र माथुर

पात्र

हेमलता

आया

राय साहब

बीरेन

चेतराम

करमचन्द

बालेश्वर

लोचन

[उत्तर भारत के एक गाँव में एक बड़े घराने के बँगले का बगीचा । पृष्ठभूमि में मकान की झलक । मकान में जाने के लिए बायीं तरफ़ से रास्ता है और बाहर जाने के लिए दाहिनी तरफ़ । समय चैत्र पूनो की संध्या । चाँदनी का साम्राज्य गोधूलि वेला में ही फैल रहा है । राय तारानाथ हेमलता के साथ एक स्थान की ओर संकेत करते हुए आते हैं ।]

राय साहब—और यही वह स्थान है जहाँ तुम्हारी माँ पूजा के बाद तुलसी जी को पानी चढ़ाने आती और मैं.....

हेमलता—आप तो नास्तिक रहे होंगे पापा ?

राय साहब—तुम्हारी माँ को चिढ़ाने के लिए । लेकिन उसकी श्रद्धा अडिग थी । और तभी मैं बगीचे के किसी कोने में...शायद वही तो...वह देखती हो न पत्थर ?

हेमलता—याद है ।

राय साहब—क्या याद है ?

हेमलता—कि उस पत्थर पर बैठकर आप मुझे सितारों की कथा

सुनाया करते थे ! (रुककर मानो कुछ याद आयी हो) पापा, कलकत्ते में सितारों-भरा आसमान मानो मेरे मन के कोने में दुबका पड़ा रहता था, लेकिन यहाँ (स्निग्ध स्वर) गाँव आते ऐसे ही खिला पड़ता है, जैसे आज इस चैत पूनो की चाँदनी !

राय साहब—आसमान भी खिला पड़ता है और तुम्हारा मन भी बेटी !
(हँसता है । कुछ रुककर) बजा क्या है ? (आहिस्ता से) गाड़ी का तो वक्त हो गया होगा ?

हेमलता—आप भी पापा (रुठकर) समझते हैं कि मुझे यूँ तो चाँदनी भाती ही नहीं, सिर्फ.....

राय साहब—(बात पूरी करते हुए) बीरेन की इन्तज़ारी की घड़ी में ही खिली पड़ती है ! (हँसते हैं) बुराई क्या है ? बीरेन भला लड़का है, इसलिए तो यहाँ आने का न्योता दिया है उसे । देखूँ गाँव की आभा उसके मन चढ़ती है या नहीं ?

हेमलता—जैसे जनम से ही शहर की धूल फाँकी हो ।

राय साहब—वही समझो । कहता था न कि बचपन में पिता के मरने पर बरेली चला गया और उसके बाद लखनऊ और तब कलकत्ता...

हेमलता—मुझे भी तो आप बचपन में ही कलकत्ते ले गये और अब लाये हैं गाँव पहली बार.....

राय साहब—मैं तुम्हें लाया हूँ बेटी या तुम मुझे ?

हेमलता—पापा, आते ही मैं तो यहाँ की हो गयी । न जाने कितने युगों का नाता जुड़ गया । (उत्सासपूर्ण स्वर) यह हमारा घर, पुरानी कोठी, जिसकी दीवार में पड़ी दरारें मुस्कान भरे मुखड़े की सिलवटें हैं ! ये दूर-दूर तक फैले हुए खेत, जिनपर दबे-पाँव दौड़ते-दौड़ते हवा उन पर निछावर हो जाती है और यह चाँदनी जो जितनी हँसती है उतना ही छिपाती भी है । (तन्मय) कलकत्ते में चैत्र की चाँदनी और ईद के चाँद में कोई अंतर नहीं होता । लेकिन यहाँ,

भोपड़ियों पर बाँस के भुरमुटों में, खेत-खलिहान पर, बे-हिसाब बे-जुबान, बे-भिक्षक चाँदनी की दौलत विखरी पड़ रही है। ओह, पापा !

(अपरिमित सुखानुभूति का मौन)

आया—(नेपथ्य में) हेम बीबी चाय तैयार है !

राय साहब—चाय ! इतनी देर में ?

हेमलता—आया की ज़िद ! कहती है सर्दी हो चली है, थोड़ी चाय पी लो। (मकान की ओर रुख करके) यहीं ले आओ आया, बगीचे में। और दो मूढ़े भी !

राय साहब—(स्मृति के सागर में उतराते हैं) सोचता हूँ कि अगर तुम्हारी माँ तुम्हारी तरह बोल या लिख पाती तो वह भी कवि या तुम्हारी तरह आर्टिस्ट होती।

हेमलता—अगर माँ बोल पाती तो आपको कलकत्ते न जाने देती !

राय साहब—रोका था। दो-चार आँसू भी गिराये थे। लेकिन क्या तुम सच मान सकती हो हेम, कि मैं न जाता ? कैसे न जाता ? सारे कैरियर का सवाल था। यह ज़मींदारी उन दिनों भरी-पूरी थी, लेकिन आखिर को ले न डूबती मुझे अपने साथ !

हेमलता—काश इस गाँव में ही हाईकोर्ट होता ! यहीं आप वकालत करते और यहीं जज हो जाते !

राय साहब—वाह बेटी ! तब तो यहीं वह बड़ा अस्पताल भी होता जहाँ तुम्हारी माँ की लम्बी बिमारी का इलाज हुआ था और यहीं वह कालिज और हाई स्कूल होते, जहाँ तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा हुई और यहीं वे थियेटर, सिनेमा...

(आया का प्रवेश। हाथ में ट्रे। अपनी धुन में बात करती है :)

आया—यही तो मैं कहती थी सरकार ! इस देहात में कैसे हेम बिटिया की तबियत लगेगी। सनीमा नहीं, थैटर नहीं, क्लब नहीं। (पीछे

की तरफ़ देखकर पुकारती हुई) अरे ओ चेतुआ, किधर ले गया मेज़ ?...देहात का आदमी, समझ भी तो मोटी है ! (चेतुआ एक हाथ में छोटी-सी टेबल और एक में मूढ़ा लिये हुए आता है) उधर रख...हाँ वस (मेज़ पर चाय की ट्रे रख देती है । चाय बनाती हुई) आपके लिए भी बनाऊँ सरकार ?

राय साहब—(कुछ अनिश्चित से मूढ़े पर बैठते हुए) मे...रे..... लिए.....

आया—(चेतुआ को खड़ा देखकर) अरे खड़ा क्यों है । दूसरा मूढ़ा तो उठा ला दीड़कर ।

चेतराम—(जाते हुए) अभी लाया जी !

आया—(प्याला देती हुई) लो बीबी जी, गर्म कपड़ा नहीं पहना तो गर्म चाय तो लो ।

हेमलता—तुम तो आया समझती हो कि जैसे हम बरफ़ की चोटी पर बैठे हैं !

आया—(दूसरा प्याला बनाते हुए) नहीं हेम बीबी, देहात की हवा शहर वालों के लिए चंडी होती है चंडी !

हेमलता—तुम भी तो देहात की हो आया ।

आया—अब तीन चौथाई जिन्दगानी तो गुजर गयी आपालोगों के संग (चाय का प्याला राय साहब की ओर बढ़ाते हुए) लीजिए सरकार ! (राय साहब को देख, कुछ चौंककर) अरे !

राय साहब—(प्याला लेते हुए) क्यों क्या हुआ ?

आया—आप भी सरकार गजब करते हैं । यहाँ खुले में आप यों ही बैठे हैं ।

(घर की तरफ़ तेज़ी से बढ़ती है ।)

हेमलता—किधर चली आया ?

आया—(जल्दी से) ड्रेसिंग गाउन लेने ।...साहब का बेरा कलकत्ते से

आता तो ऐसी गफ़लत क्यों होती ?

(चली जाती है ।)

राय साहब—हा हा हा (ठहाका मारते हैं) गुड ओल्ड आया ! (चाय पीते हुए) समझती है कि सारी दुनिया नादान बच्चों का भुंड है और अकेली वह माँ है ।

हेमलता—क्या सच उसे देहात नहीं सुहाता पापा ? मैं नहीं मान सकती ।

मगर (चेतू मूढ़ा ले आया है) यहीं रख दो मूढ़ा, मेज़ के पास ।

राय साहब—मुझे ये पुराने मूढ़े पसन्द हैं । कमर बिलकुल ठीक एगिल में बैठती है । (चेतू को रोककर) ए, क्या नाम है तुम्हारा ?

चेतराम—जी, चेतुराम !

राय साहब—कहार हो ?

चेतराम—मुसहर हूँ सरकार !

राय साहब—मुसहरो की तो एक बस्ती थी करीब ही कहीं, गन्दी-सड़ी । चाप का नाम ?

चेतराम—कमतूराम !...अब गन्दगी नहीं है सरकार !

राय साहब—अरे, तू कमतू का लड़का है ?

हेमलता—क्यों नहीं है अब गन्दी बस्ती ?

(आया का प्रवेश)

आया—लीजिए सरकार ड्रेसिंग गाउन, जब बैठना ही है यहाँ खुले में तो...अरे तू यहीं खड़ा है चेतू ?

राय साहब—(ड्रेसिंग गाउन पहनते हुए) आया, यह तो उसी कमतू का लड़का है जो १५ बरस पहले यहाँ.....

आया—हाँ, सरकार मैंने तो उसे ही बुलाया था, मगर उसने लड़के को भेज दिया । खैर, जाने-पहचाने का लड़का है । चोरी-ओरी करेगा तो पकड़ना मुश्किल नहीं ।

हेमलता—तुम तो आया...

आया—अरे हाँ बीबी जी, अब ये देहाती सीधे-सादे नहीं रहे । हमारे-
 तुम्हारे कान काटते हैं । चेतू चाय की ट्रे लेकर जल्दी आना ।
 पलँग-वलँग ठीक करने हैं । (चलते-चलते) देखूँ बावर्ची ने खाना
 भी तैयार किया कि नहीं ।

राय साहब—डीयर ओल्ड आया ।

(आया जाती है । राय साहब चाय की चुस्की लेते हैं)

हेमलता—चेतराम !

चेतराम—जी बीबी जी ।

हेमलता—मुसहर बस्ती में अब गन्दगी नहीं है ! क्यों ?

चेतराम—बस्ती ही बह गयी सरकार !

राय साहब—बह गयी ?

चेतराम—पिछले साल बहुत जोर की बाढ़ आयी । हमारी तो बस्ती ही
 खतम हो गयी । चालीस घर थे । मेरे दादा के पास धनहर खेत था
 आठ कट्ठा । जैसे-तैसे महाजन से लुड़ाया । वह भी बालू में पड़
 गया । और कान्हू काका की चार बकरी थीं ! सब पानी.....

राय साहब—सरकारी मदद मिली ?

चेतराम—बातचीत तो चल रही है...पर अब तो हम लोग पहाड़ी
 की तलहटी में चले गये हैं । नयी टोली बस रही है ।

राय साहब—ओ हो, बड़े जोभ हैं । लेकिन वहाँ तो ऊसर ज़मीन है ।
 खेती की गुंजायश कहाँ ?

चेतराम—मुस्किल तो हुई है सरकार । पर बारी-बारी से दस-दस जन
 मिलकर तैयार करते हैं । एक बाँध बन जाय तो बेड़ा पार है
 सरकार ।

राय साहब—हिम्मत तो बहुत की तुम लोगों ने ।

हेमलता—लेकिन है मुसीबत ही । रोज़ का खाना-पीना कैसे चलत
 होगा इन लोगों का ?

राय साहब—यही, नौकरी-मजूरी । जब मिल जाय ।

चेतराम—वह तो हई सरकार ! पर अब तो बाँस का काम करने लगे हैं । हाट-बाज़ार में बिक जाता है । इनसे भी बढ़िया मूढ़े बनाने लगे हैं ।

राय साहब—अच्छा ? लाना भई हमारे लिए भी एक सेट ।

चेतराम—ज़रूर सरकार ! दादा तो इसी में लगे रहते हैं रात-दिन । मैंने भी टोकरी बनाना सीख लिया है, रंग-बिरंगी । लोचन भैया को बहुत पसंद हैं । कहते हैं सहर में तो बहुत बिकेंगी...

हेमलता—तो तुम्हारे भाई भी हैं ?

चेतराम—(हँसता है) न बीबी जी ! लोचन भैया ! लोचन भैया तो...सब के भैया हैं ! कहते हैं.....

राय साहब—जगत भैया !

आया—(नेपथ्य में) चेतू, ओ चेतू !

चेतराम—चाय ले जाऊँ सरकार ?

राय साहब—हाँ ! और तो नहीं लोगी हेम ?

हेमलता—उं...हाँ...हँ...नहीं । ले जाओ !

[चेतू ले जाता है । राय साहब ड्रेसिंग गाउन की जेब में हाथ डालकर घूमने लगते हैं ।]

राय साहब—तो यह है इन लोगों की जिन्दगी । गरीब भी और गन्दे भी । उन दिनों तो उस टोली में बिना नाक बंद किये जाना हो ही नहीं सकता था । बाप इसका मेहनती था । असल में काम करने में पक्के हैं ये लोग, लेकिन हैं जाहिल !

हेमलता—पापा, आपको याद है हमारे आर्ट मास्टर ने यह तस्वीर बनायी थी 'किसान की साँझ'—कंधे पर हल, आगे बैल, थका-माँदा किसान साँझ की चित्ताकर्षक रंगीनी में भी निर्लित...

राय साहब—पाँच सौ रुपये दाम ख़ा था ना उन्होंने उसका ?

हेमलता—पापा, आपने गौर किया इस चेताराम की शक्त उससे मिलती है...मास्टर साहब कहते थे देहाती जिन्दगी और दृश्यों में अनगिनती मास्टर-पीसेज के बीज बिखरे पड़े हैं। एक-एक चेहरे में सदियों का अवसाद है। एक-एक भाँकी में युगों की गहराई। अमृता शेरगिल.....

राय साहब—अमृता शेरगिल...भई, उसकी तसवीरों पर तो मातम-सा छाया रहता है।

हेमलता—वह तो अपना-अपना ऐटीट्यूड है। अपनी भंगिमा लेकिन पापा, यह तो मानिएगा कि शेरगिल के रंगों में भारत के गाँव की मिट्टी झलक रही है। पापा मुझे लगता है जैसे मेरी कूची, मेरे ब्रुश को यहाँ आकर नयी दृष्टि मिली हो। कितने चित्र मैं यहाँ खींच सकती हूँ ! पकते हुए गेहूँ के खेत में चकित-सी किसान बाला। रंग-धिरंगी बाँस की टोकरियाँ बनाता हुआ इसी चेताराम का बाप ! सवेरे की किरण में घुली-घुली-सी गाय को दुहता हुआ बाला.....

राय साहब—और यह चाँदनी ! (हँसते हैं) मगर हेम, वह चित्र भी तैयार हुआ या नहीं ?

हेमलता—कौन-सा ?

राय साहब—अरे वही...खास चित्र !

हेमलता—पापा आप तो (शर्मीली-सी) लेकिन बीरेन ने पंद्रह मिनट भी तो लगातार सिटिंग नहीं दी। इधर-से-उधर फूदकते फिरते थे।

राय साहब—इस वक्त भी जान पड़ता है कहीं फुदक ही रहे हैं, हज़रत।

हेमलता—आपने भी फिज़ूल भेजा ताँगा। जिसके पैर में ही सनीचर हो.....

(बीरेन पीछे से इटाव निकलता है ।)

बीरेन—सनीचर नहीं आज तो शुक्र है । कहीं इसी वजह से तुम ताँगा भेजना नहीं भूल गयीं ।

हेमलता—बीरेन !

राय साहब—बीरेन ? अरे ! क्या तुम्हें ताँगा नहीं मिला स्टेशन पर ?

बीरेन—नमस्ते पापा जी ! जी, मुझे ताँगा नहीं मिला, शायद.....

राय साहब—अजब अहमक है यह साईंस । रास्ता तो एक ही है ।

बीरेन—लेकिन कोई बात नहीं । मेरा भी एक काम बन गया ।

राय साहब—सामान कहाँ है ?

हेमलता—चेतू ! (पुकारते हुए) आया, चेतू को भेजना ! सामान...

बीरेन—सामान तो चौधरी जंगबहादुर की देख-रेख में स्टेशन ही छोड़ आया हूँ ।

राय साहब—यानी मिल गये तुम्हें भी चौधरी जंगबहादुर ।

हेमलता—वही न पापा, जो हर गाड़ी पर किसी-न-किसी आने वाले को लेने के लिए जाते हैं ?

बीरेन—या किसी-न-किसी जाने वाले को पहुँचाने । मगर यह भी निराला शौक है कि बिलानागा हर गाड़ी पर स्टेशन जा पहुँचना ।

राय साहब—दो ही तो गाड़ी आती हैं इस छोटे स्टेशन पर, लेकिन चौधरी की वजह से उस सूने स्टेशन पर रौनक हो जाती है ।

बीरेन—जी हाँ, जब तक उनसे मुलाकात नहीं हुई तब तक तो मुझे भी लगा कि पैसफ्रिक सागर के टापू पर बहक गया हूँ ।

हेमलता—यहाँ चौरंगी की चहल-पहल की उम्मीद करना तो बेकार था बीरेन ।

बीरेन—(ठहाका) याद है न बेकन की वह उक्ति, 'भीड़ के बीच में भी चेहरे गूँगी तसवीरें जान पड़ते हैं और बातचीत घंटियाँ, अगर कोई जाना-पहचाना न हो ।' लेकिन तुमने यह कैसे समझ लिया

कि मुझे वीराना पसन्द नहीं ।.....मैं तो चौधरी साहब से भी पल्ला छुड़ाकर भागा ।

राय साहब—तो शायद उन्होंने तुम्हें समूची दास्तान सुनानी शुरू कर दी होगी ।

बीरेन—जी हाँ, यह बताया कि वे साल भर में एक बार, सिर्फ़ एक बार, कलकत्ते की रेस में बाज़ी लगाने जाते हैं । यह भी बताया कि गवर्नर साहब के जिस डिनर में उन्हें बुलाया गया था, उसका निमंत्रण-पत्र अब भी उनके पास है और यह कि इस गाँव में अब तक जितनी बार कलकटर आये हैं, उनके दिन और तारीख़ें उन्हें पूरी तरह याद हैं !

हेमलता—ग़ज़ब है !

राय साहब—हाँ भाई याददाश्त चौधरी की लाजवाब है ।

बीरेन—ताददाश्त की दुनिया में ही रहते जान पड़ते हैं ! इसलिए जब उन्होंने स्टेशन पर सामान की देखभाल का ज़िम्मा लिया तो मैंने भी छुटकारे की साँस ली और रास्ता छोड़कर खेतों की राह बस्ती की ओर चल दिया ।

(आया का प्रवेश)

आया—बीरेन बाबू, पहले गर्म चाय पीजिएगा या फिर खाने का ही इन्तज़ाम...

बीरेन—ओ ! हलो आया कैसी हो ?

आया—मैं तो मजे ही में हूँ । लेकिन आपके आने से हमारी हेम बीची के लिए चहल-पहल हो गयी वरना.....

हेमलता—वरना क्या ? मुझे तो कलकत्ते की चहल-पहल से यहाँ का सूना संगीत ही भाता है ।

राय साहब—आया, हेम की उलटवाँसियाँ तुम न समझोगी ।

बीरेन—लेकिन, आया, अब मैं इस जंगल में मंगल करने वाला हूँ ।

आया—भगवान वह दिन भी जल्दी दिखावें मैं तो हेम बिटिया.....

हेमलता—चुप भी रहो, आया !

राय साहब—(ठहाका) हा, हा, हा !

बीरेन—मैं दूसरी बात कह रहा था । मेरा मतलब है इस गाँव की काया-पलट करना । यह गाँव मेरा इन्तज़ार कर रहा है, जैसे...जैसे...

हेमलता—जैसे वीणा के तार उस्ताद की उँगलियों का (किंचित् हास) खूब !

राय साहब—(हँसते हुए) हा, हा, हा ! बीरेन, है न मेरी बिटिया लाजवाब ?

बीरेन—लेकिन वीणा के सुर में वह मस्ती कहाँ जो एक नयी दुनिया के निर्माण में है ।

हेमलता—(व्यंग्य) कोलम्बस !

राय साहब—नयी दुनिया का निर्माण । यह तो दिलचस्प बात जान पड़ती है बीरेन ! मुने तो.....

बीरेन—जिस रास्ते से—शार्टकट से—मैं आया हूँ, उससे लगी हुई जो ज़मीन है, थोड़ी ऊँची और समतल, उसे देखकर मेरी तबीयत फड़क गयी और मैंने तय कर लिया कि.....

आया—बीरेन बाबू !

बीरेन—(अपनी बात जारी रखते हुए) कि बिलकुल आइडियल रहेगी वह जगह ! बिलकुल मानो उसी के लिए तैयार खड़ी हो.....

राय साहब—किसके लिए ?

आया—सरकार बीरेन बाबू की बातें तो सावन की झरी हैं, पर मुझे तो बहुतेरा काम पड़ा है ।

हेमलता—(चंचल) इन्हें खाना मत देना आया !

बीरेन—(उसी धुन में) मैं कहता हूँ पापा जी उससे बेहतर जगह...

राय साहब—ना, भई, बीरेन ! पहले आया का हुक्म मान लो । हेम

कमरा इन्हें दिखा दो । गर्म पानी का इन्तज़ाम तो होगा ही । जब तैयार हो जायें और खाना भी, तो आया, मुझे ख़बर दे देना ।

आया—लेकिन इस मौसम में बाहर रहिएगा देर तक तो.....

राय साहब—बस अभी आया । चौधरी साहब इस बीच में आयें तो दो बात उनसे भी कर लूँगा ।

बीरेन—(जाते-जाते) लेकिन, पापा जी, आप ग़ौर करके देखिए, ग्रामोद्धार-समिति से लिए पहाड़ की तलहटी वाली ज़मीन से मौज़ू और कोई जगह हो ही नहीं सकती ! मैंने उन लोगों से.....

(जाता है ।)

राय साहब—ग्रामोद्धार-समिति ! ख़याल तो अच्छा है । एक ज़माने में मैंने भी...(सामने देखकर) कौन ? चेतू ! अरे तू यहाँ कैसे खड़ा है ?

चेतू—सरकार.....

(रुक जाता है ।)

राय साहब—क्या गर्म पानी तैयार नहीं ?

चेतू—कर आया सरकार ! कमरा भी साफ़ है ।

राय साहब—ठीक ।

चेतू—सरकार !

(किम्ककर रुक जाता है ।)

राय साहब—क्या बात है चेतू ?

चेतू—सरकार वह तलहटी वाली ज़मीन !

राय साहब—कौन ज़मीन ?

चेतू—जी नये साहब जिसे लेने की सोच रहे हैं ।

राय साहब—अरे बीरेन ! अच्छा वह ज़मीन, जहाँ वह ग्रामोद्धार-समिति बैठाएँगे

चेतू—लेकिन सरकार उस पर तो हम लोग अपना नया बसेरा कर रहे हैं। आठ-दस बाँस की कोठियाँ—भुरमुट—लग जायें तो बेड़ा पार हो जाय।

राय साहब—अरे तुम मुसहरों का क्या ! जहाँ बैठ जाओगे, बसेरा हो जमयेगा, लेकिन गाँव में जो उद्धार के लिए काम होगा—(घोड़े के टापोँ और ताँगे की आवाज़) यह क्या ? ताँगा आ गया क्या ? देख भाई, बीरेन बाबू का सामान उतार ला। (चेतू बाहर जाता है। ताँगा रुकने की आवाज़) चौधरी साहब हैं क्या ?

बालेश्वर—(बाहर ही से बोलता हुआ आता है) जी, चौधरी साहब ने ही मुझे भेजा है सामान के साथ। मेरा नाम बालेश्वर है, बी० पी० सिन्हा। और ये हैं करमचन्द बरैठा (करमचन्द नमस्ते करता है) बच्चू बाबू के चचेरे भाई हैं। मैं चौधरी का भतीजा हूँ।

राय साहब—कहाँ रह गये चौधरी साहब ?

बालेश्वर—जी ताँगे में आने की वजह से उनके घूमने का कोटा पूरा नहीं हुआ तो फिर से घूमने गये हैं।

राय साहब—(हँसते हुए) खूब !

करमचन्द—हम लोगों ने सोचा कि आपका सामान भी पहुँचा दें और आपके दर्शन भी हो जायें।

बालेश्वर—बात यह है कि देहात में कोई 'लाइफ़' नहीं।

करमचन्द—जब से शहर से लौटे हैं, जान पड़ता है कि बन्दी बन गये हैं। 'ट्रान्सपोर्टेशन क्लार लाइफ़ !'

राय साहब—क्या करते थे शहर में ?

बालेश्वर—करमचन्द तो इंटरमीडियेट तक पढ़कर लौट आये और मैं.....

करमचन्द—बात यह है कि इम्तहान के परचे ही बेढंगे बनाये थे

किसी ने ।

बालेश्वर—मैं तो बी० ए० कर रहा था, और एक दफ्तर में किरानी की नौकरी के लिए भी दरखास्त दे दी थी, मगर सिकारिश की कमी की वजह से.....

राय साहब—किरानी ! तुम्हारे यहाँ तो कई बीघे खेती होती है ।

बालेश्वर—पढ़ाई-लिखाई के बाद भी खेती ! पढ़े फ़ारसी बेचे तेल !

करमचन्द—और फिर शहर की लाइफ़ की बात ही और है । खाने के लिए होटल, सैर के लिए मोटर, तमाशे के लिए सिनेमा ।

राय साहब—रहते कहाँ थे ?

बालेश्वर—शहर में रहने का क्या ! चार अंगुल का कोना भी काफ़ी है ।

करमचन्द—शहर की सड़कें यहाँ के बैठक-खाने से कम नहीं । वह चहल-पहल, वह रंगीनियाँ !

राय साहब—भई, यह तो तुम लोग ग़लत कहते हो । मैंने अपने बचपन और जवानी के अनेक सुहाने बरस यहाँ गुज़ारे हैं ।

बालेश्वर—तब बात और रही होगी, जज साहब !

करमचन्द—और फिर छोटी उम्र में शहर की मनमोहक ज़िन्दगी से गाँव का मिलान करने का मौका कहाँ मिलता होगा ।

राय साहब—मनमोहक...खैर । आजकल क्या शग़ल रहता है ?

करमचन्द—गले पड़ी ढोलकी बजावे सिद्ध ! सोचा कुछ पढ़े-लिखे जानकार लोगों का क्लब ही बना लें ।

बालेश्वर—वह भी तो नहीं करने देते लोग ।

राय साहब—कौन लोग ?

करमचन्द—इस गाँव की पालिटिक्स आपको नहीं मालूम ?

राय साहब—यहाँ भी पालिटिक्स है ।

बालेश्वर—ज़बरदस्त ! बात यह है कि मैं और करमचन्द तो ढंग से

क्लब चलाना चाहते हैं। प्रेज़ीडेंट, दो वाइस प्रेज़ीडेंट, एक सेक्रेटरी, दो ज़्वाइंट सेक्रेटरी, पाँच कमेटी-मेम्बर।

करमचन्द—जी हाँ, यह देखिए ! (एक कागज़ निकालकर राय साहब को दिखाता है) इस तरह लेटर-पेपर छपवाने का इरादा है। ऊपर क्लब का नाम रहेगा और.....यहाँ हाशिये में सब पदाधिकारियों के नाम और.....

बालेश्वर—लेकिन ठाकुरों की बस्ती में दो आदमी हैं, धरमसिंह और किशनकुमार सिंह। कहते हैं, दोनों वाइस प्रेज़ीडेंट उन्हीं के रहें और कमेटी में भी तीन आदमी। मैंने कहा कि एक ज़्वाइंट सेक्रेटरी ले लो और दो कमेटी के मेम्बर।

राय साहब—वे भी तो पढ़े-लिखे होंगे।

करमचन्द—जी हाँ, कालेज तक।

राय साहब—तब ?

करमचन्द—अपने को लाट साहब समझते हैं। कहते हैं, क्लब होगा तो उन्हीं के मोहल्ले में।

बालेश्वर—भला आप ही सोचिए, हम लोगों के रहते हुए ठाकुरों की बस्ती में क्लब कैसे खुल सकता है ?

करमचन्द—आप ही इंसफ़्र कीजिए, जज साहब।

राय साहब—भई, इसके लिए तुम बीरेन से बात करो। यह लो बीरेन आ गये।

बीरेन—(हेम के साथ आते हुए) पापा जी ग्रामोद्धार-समिति वाली वह बात मैंने पूरी नहीं की।

राय साहब—बीरेन वह बात तुम इन लोगों को समझाओ। यह हैं बालेश्वर उर्फ़ बी० पी० सिन्हा और वे हैं करमचन्द बरैठा। गाँव के पढ़े-लिखे नौजवान ! क्लब खोलना चाहते हैं। मैं तो चलता हूँ, देरी हो रही है। हेम बेटी, बीरेन को देर मत करने देना।

(चले जाते हैं)

बीरेन—अच्छा तो गाँव में क्लब स्थापित करना चाहते हैं आप ?

बालेश्वर—जी हाँ । यह देखिए यह है हम लोगों का लेटर-पेपर और नियमावली का मसौदा । बात यह है कि.....

बीरेन—आइए मेरे कमरे में चलिए, वहाँ इत्मीनान से बातें होंगी । इधर से चलिए । मैं अभी आया ।

(बालेश्वर और करमचन्द जाते हैं ।)

हेमलता—मैं यही हूँ । जल्दी करना नहीं तो जानते हो आया वह खबर लेगी कि.....

बीरेन—तुम भी चलो न ! क्या उमदा मेरी योजना है । सुनकर भड़क जाओगी ।

हेमलता—कमरे में चलूँ ? उँह...देखते हो यह चाँदनी (बाहर दूर से सम्मिलित स्वर में गाने की आवाज़) और सुनते हो यह स्वर, मानो चाँदनी बोलती हो !

बीरेन—(जाते-जाते शरारत भरे स्वर में) मैं तो देखता हूँ वस किसी का चाँद-सा मुखड़ा और सुनता हूँ तो अपने दिल की धड़कन (हाथ हिलाते हुए) टा...टा !

हेमलता—(मीठी मुस्कान) झूठे ।

(सम्मिलित संगीत-स्वर निकट आ रहा है, स्त्री-पुरुष दोनों का स्वर)

चननिया छटकी मो का करो राम ।

गंगा मोर मइया जमुना मोर बहिनी

चाँद सूरज दूनो भइया

मो का करो राम । चननिया छटकी.....

सासु मोर रानी, ससुर मोर राजा

देवरा हवें सहजादा मो का करो राम

चननिया छटकी मो का करो राम !

[गाने के बीच में चेतू का जल्दी से आना और बाहर की तरफ चलना]

हेमलता—कौन चेतू ? कहाँ जा रहे हो ?

चेतू—जी...वह...वह...गाना—

हेमलता—बड़ा सुन्दर है ।

चेतू—मेरी ही बस्ती की टोली है । हर पूनो की रात को । गाँव के डगरे-डगरे घूमती है ।

हेमलता—इधर ही आ रही है ।

चेतू—सामने वाले डगरे में । वह देखिए । और देखिए उसमें वह लोचन भैया भी हैं ।.....

हेमलता—कहाँ ?

चेतू—वह मिर्जई पहने । मैं चलता हूँ बीबी जी । वे लोग मुझे बुला रहे हैं.....

(जाता है । गाने का स्वर निकट आकर दूर जाता है ।)

‘मो का करो राम...मो का करो राम !’

हेमलता—(अब स्वर मंद हो गया है) ‘चननिया छटकी मो का करो राम !’ ओह, कैसी मनोहर पीर है यह !

आया—हेम बीबी, हेम बीबी । इस ठंड में कब तक बाहर रहोगी ?

हेमलता—(उच्च स्वर) अभी आयी आया । (फिर मंद स्वर में) चाँदनी और मैं ! मैं और बीरेन ! लेकिन यह गाना और वह... वह...लोचन !

(विचार-मग्न अवस्था में प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान वही । पन्द्रह रोज़ बाद । समय सबेरे । बाहर से राय

साहब और एक व्यक्ति की बातचीत का अस्पष्ट स्वर और फिर थोड़ी देर में ठहाका मार-मारकर हँसते हुए राय साहब का प्रवेश ।]

राय साहब—हा, हा, हा ! वाह भाई वाह ! मुना बेटी हेम ! हेम !

हेमलता—(नेपथ्य में) आई पापा !

राय साहब—हा, हा, हा !

(हेम का प्रवेश, हाथ में एक बड़ा-सा चित्र और ब्रश ।)

हेमलता—क्या बात हुई पापा ?

राय साहब—हेम हमारे चौधरी साहब भी लाजवाब हैं ! अभी तो मुझे फाटक पर छोड़कर गये हैं । सवेरे की चहलकदमी में इनका साथ न हो तो मैं तो इस देहात में गूँगा भी हो जाऊँ और बहरा भी !

हेमलता—आप तो आज उनके घर तक जाने वाले थे ।

राय साहब—गया तो था, यही सोचकर कि थोड़ी देर के लिए उनकी बैठक में भी चलूँ, लेकिन बाहर से ही बोले, 'वहीं ठहरिए !'

हेमलता—अरे !

राय साहब—कहने लगे, 'पहले मैं ऊपर पहुँच जाऊँ, तब आप कार्ड भेजिएगा और तब बैठक में जाना मुनासिब होगा ! क्रायदा जो है ।'

हेमलता—(हँसती है) ऐसी भी क्या अँग्रेज़ियत !

राय साहब—और भी तो सुनो । घर में उनका जो प्राइवेट कमरा है, उसमें बाहर एक घंटी लगी है । जिसे भी अन्दर जाना हो, घंटी बजानी होती है । बिना घंटी बजाये अगर कोई अन्दर आ गया तो चौधरी साहब उससे बात नहीं करते, चाहे उनकी बीबी हो ।

हेमलता—मालूम होता है मनुस्मृति की तरह एटीकेट संहिता चौधरी साहब छोड़कर जाएँगे ।

राय साहब—लेकिन आदमी दिल का साफ़ और बिलकुल खरा है, हीरे की मानिन्द ! दूसरे के एक पैसे पर हाथ नहीं लगाता ।

हेमलता—तभी शायद बीरेन ने उन्हें ग्रामोद्धार-समिति का आँडीटर बनाया है।

राय साहब—बीरेन से कह देना कि चौधरी साहब हिसाब में बहुत कड़े हैं। कह रहे थे कि चूँकि इस संस्था में उनका भतीजा बालेश्वर शामिल है, इसलिए इसकी तो एक-एक पाई पर निगाह रखेंगे !

हेमलता—बालेश्वर मुझे पसन्द नहीं। भगड़ालू आदमी है।

राय साहब—भगड़ा तो गाँव की नस-नस में बसा है।

हेमलता—पहले भी ऐसा था पापा ?

राय साहब—था, लेकिन ऐसी हठ-धर्मी नहीं थी। मैं यह नहीं कहता कि पहले, शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे...लेकिन...लेकिन... पहले, पढ़े-लिखे नौजवान गाँव में कम थे और.....

हेमलता—पढ़े-लिखे नहीं, अधकचरे। टैगोर ने लिखा है न 'हाफ बैकड कल्चर।' लेकिन पापा क्या सच बीरेन का तूफानी जोश और उसकी पैनी सूझ गाँव में काया-पलट कर देगी ?

राय साहब—तुम क्या समझती हो ?

हेमलता—कह रहे थे न बीरेन उस रोज़ कि गाँव में क्रांति के लिए एक नये दृष्टि-कोण की ज़रूरत है, एक नये मानसिक धरातल की.....

राय साहब—बीरेन बोलता खूब है ! उसी का जादू है।

हेमलता—सैकड़ों की जनता भूम जाती है।

राय साहब—उस दूसरी पार्टी का क्या हुआ। ग्राम-सुधार-समिति में शामिल हुई या नहीं ?

हेमलता—अभी तो नहीं। कल रात बहुत सा वाद-विवाद चलता रहा। बीरेन देर से लौटे थे। पता नहीं क्या हुआ ?

राय साहब—लेकिन आज तो नींव पड़ेगी समिति की।

हेमलता—हाँ, आप नहीं जाइएगा उत्सव में पापा ?

राय साहब—न बेटी, मैंने तो बीरेन से पहले ही कह दिया था कि मैं नहीं जा सकूँगी । मुझे.....

[एक हाथ में कागज़ लिये, दूसरे से कुरते के बटन लगाते हुए बीरेन का प्रवेश ।]

बीरेन—लेकिन पापा जी, चौधरी साहब तो आ रहे हैं ।

राय साहब—उन्हें ठीक स्थान पर बैठाना, नियम के साथ ।

बीरेन—(हँसते हुए) उनकी पूरी देख-भाल होगी । पापा जी, अगर आप वहाँ पहुँच नहीं रहे हैं तो यह तो देखिए मेरे भाषण का ड्राफ्ट ।

राय साहब—(उसके हाथ से कागज़ लेते हुए) तुम तो बिना तैयारी के ही बोलते हो ।

(कागज़ पढ़ने लगते हैं ।)

बीरेन—जी हाँ, लेकिन आज तो ग्राम-सुधार-समिति की समूची योजना को गाँव के सामने रखना है...पढ़िए न !

राय साहब—(पढ़ते हुए) बड़ी ज़ोरदार स्कीम है !

बीरेन—जी आगे और देखिए (हेम से) और हेम समिति के भवन में जो चित्र टँगेंगे तुमने पूरे कर लिये ?

हेमलता—एक तो तैयार ही-सा है ।

(चित्र की ओर संकेत करती है ।)

बीरेन—यह ?...बड़े चटकीले रंग हैं, बड़ा मनोहर नाच का दृश्य है...

खूब ! लेकिन...ये...इस कोने के अँधेरे में ये कौन लोग हैं !...

हेमलता—तुम क्या समझते हो ?

बीरेन—(रुककर सोचता-सा) जैसे निर्वासित भटके हुए प्राणी !

राय साहब—(पढ़ते-पढ़ते) बीरेन तुम्हारी ग्राम-सुधार-समिति में

दिमागी कसरत तो बहुत है—पुस्तकालय, भाषण, अध्ययन-मंडल.....

बीरेन—(चित्र को अलग रखता हुआ) वही तो पापा जी ! ग्राम-जागृति के मानी क्या हैं ? अपनी ज़रूरतों और समस्याओं पर विचार करने की क्षमता ! देहात की मूक-व्यथा को वाणी की आवश्यकता है । माँग है, चुने हुए ऐसे नौजवानों की जो धरती की घुटनों को गगन के गर्जन का रूप दे सकें, जो रूढ़ियों के खिलाफ आवाज़ उठा सकें, जो आर्थिक प्रश्नों से माथा-पच्ची कर सकें । मैं समिति के पुस्तकालय में मार्क्स, लेनिन से लेकर स्पेंग्लर, रसेल इत्यादि सभी ग्रंथों का अध्ययन कराऊँगा । एक नयी रोशनी, एक नया मानसिक मन्थन—इंटलेक्चुअल फ़रमेंट.....

राय साहब—ठीक बीरेन ठीक ! बातें तो बहुत होंगी, लेकिन भई, देहात की गरीबी और गन्दगी देखकर तो मन उचाट होता है ।

बीरेन—(जोश के साथ) यह आपने ठीक सवाल उठाया । गरीबी और गन्दगी ! पापा जी, इस गरीबी और गन्दगी को देखकर मेरा मन क्रोधाग्नि से जल जाता है । वे बेघरबार के बूढ़े-बच्चे, वह भूखे-भिखमंगों की टोली, वे चीथड़ों में सिकुड़ी औरतें—इन सब के ध्यान-मात्र से दया का सागर उमड़ उठता है । लेकिन दया के सागर में क्रोध के तूफ़ान की ज़रूरत है पापा जी । तूफ़ान जो न थमना जाने, न चुप रहना । और इस तूफ़ान को क़ायम रखने के लिए चाहिए कुछ ऐसी हस्तियाँ जो उस क्रोध और दया के क़ाबू में न आकर भी उसी के राग छेड़ सकें, वकील की तरह पूरे जोश के साथ जिरह कर सकें, लेकिन मुवक़िल से अलग भी रह सकें ।

हेमलता—सरोवर में कमल, लेकिन जल से अछूता !

बीरेन—हाँ, उसी की ज़रूरत है । जो लोग इस गरीबी और गन्दगी की दलदल से दूर रहकर उसमें फँसी दुनिया के बेचस अरमानों को

समाज के सामने मुस्तैदी के साथ चुनौती का रूप दे सकें। (रुककर भाषण के स्तर से उतरता हुआ) लेकिन मुझे तो चलना है पापा जी। पहले से जाकर समिति की कुछ उलझनें सुलझानी हैं, जिससे उत्सव के वक्त फ़साद न हो...तुम तो थोड़ी देर में आओगी हेम ? तब तक इस चित्र को ठीक-ठाक कर लो। अच्छा तो मैं चला।

(चला जाता है। कुछ देर चुप्पी रहती है।)

राय साहब—यही तो जादू है बीरेन का।

हेमलता—जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले।

राय साहब—कभी-कभी मुझे तो देहात में उलझन-सी लगती है। बरसों बाद आया हूँ...जैसे चश्मा शहर ही छोड़ आया हूँ...और बीरेन है कि आते ही गाँव को अपना लिया।

हेमलता—मालूम नहीं पापा जी, उन्होंने गाँव को अपना लिया या...

(चेतू का प्रवेश)

चेतू—सरकार का नाश्ता तैयार है।

राय साहब—(आते हुए) अच्छा चेतू ! आता हूँ (चलते-चलते चित्र पर निगाह जाती है।) हेम ! यह तसवीर अच्छी बनी है।

हेमलता—थोड़ा टच करना बाकी है।

राय साहब—नाचने वालों की टोली में बड़ी लाइफ़ है। रंग की भी, गति की भी ! लेकिन कोने में यह लोग कैसे खड़े हैं ?

हेमलता—आप क्या समझते हैं ?

राय साहब—(सोचते-से सप्रयास) जैसे...जैसे सूखे और सूने दरख़्त जिन्हें धरती से ख़ुराक ही नहीं मिलती।

हेमलता—पापा, आप भी तो कवि हैं।

राय साहब—(हँसते हैं) तुम्हारा बाप भी जो हूँ।...अच्छा मैं तो चला।

(चले जाते हैं ।)

हेमलता—(विचार-मग्न) सूखे और सूने दरख्त ।...या अनर्वासित और भटके प्राणी !...नहीं...नहीं कुछ और (चेतू से) चेतू ज़रा लाना वह स्टूल, यहीं बैठकर ज़रा इसे ठीक करूँ ।

चेतू—(स्टूल रखता हुआ) यह लीजिए । रंग भी यहीं रख दूँ ?

हेमलता—लाओ, मुझे दो । अब तो तुम्हें मेरी तसवीर खींचने की भक की आदत हो गयी है ।

(रंग तैयार करने लगती है ।)

चेतू—जी, बीबी जी ।

हेमलता—देखो, थोड़ी देर में यह तसवीर लेकर तुम्हें मेरे साथ चलना है ।

चेतू—कहाँ ?

हेमलता—बीरेन बाबू की समिति का जलसा जहाँ हो रहा है, वही पहाड़ी की तलहटी पर ।

चेतू—(किस्मकता हुआ) बीबी जी, वहाँ मैं नहीं जाऊँगा ।

हेमलता—क्यों ?

चेतू—बीबी जी, वहाँ हम गरीब मुसहर अपना बसेरा करने वाले थे । हम बाँस की पौध लगा रहे थे । मेहनत करके टोकरी बनाते, घर तैयार करते । बाँध होता तो खेत भी.....

हेमलता—(चित्र बनाते-बनाते) लेकिन ग्रामोद्धार-समिति से भी तो आखिर तुम लोगों की तकलीफ़ें दूर होंगी ।

चेतू—पता नहीं बीबी जी । समिति में बहुत देर तक बहसें तो होती हैं । पर.....

हेमलता—और फिर बीरेन बाबू के दिल में तुम लोगों के लिए कितना खयाल है, कितनी दया है ।

चेतू—(किसी अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत हो) हमें दया नहीं चाहिए ।

हेमलता—(चौंकर उसकी ओर मुबत्ती है) दया नहीं चाहिए ?
चेतू ! यह तुमसे किसने कहा ?

चेतू—(कुछ सकपकाकर) बीवी जी लोचन भैया कहते हैं कि.....

(सबक पर से सम्मिलित स्वर में नारों की आवाज़)

ग्रामोद्धार-समिति ज़िन्दाबाद !

बी० पी० सिन्हा ज़िन्दाबाद !

ग़दारी का नाश हो !

ग्रामोद्धार-समिति ज़िन्दाबाद !

(आवाज़ दूर हो जाती है ।)

हेमलता—चेतू यह सब क्या है ?

(खड़ी होकर देखने लगती है ।)

चेतू—उत्सव में ही जा रहे हैं । बालेश्वर बाबू की पार्टी के लोग हैं ।
करमचन्द बाबू इनसे अलग हो गये हैं और ठाकुर पार्टी के लोगों
में जा मिले हैं ।

हेमलता—कल रात भगड़ा तय नहीं हुआ ?

चेतू—पता नहीं...यह देखिए दूसरी पार्टी के लोग भी जा रहे हैं ।
कहीं भगड़ा न हो जाय ।

(सबक पर से दूसरे दल के नारों का शोर सुनायी देता है ।)

करमचन्द की जय हो !

करमचन्द की जय हो ।

ग्रामोद्धार-समिति हमारी है ।

ग्राम-जागृति ज़िन्दाबाद !

स्वार्थी सिन्हा मुर्दाबाद ।

(आवाज़ दूर हो जाती है ।)

हेमलता—(चिंतित स्वर में) चेतू, ये लोग तो लाठी लिये हुए हैं ।

चेतू—जी हाँ, पहली पार्टी भी लैस थी ।

(नेपथ्य में पुकारते हुए आया का प्रवेश)

आया—चेतू, ओ चेतुआ ! देख तो यह क्या फ़साद है ?

चेतू—बालेश्वर बाबू और करमचन्द की पार्टियाँ हैं। दोनों बीरेन बाबू के उत्सव में गयी हैं।

हेमलता—लाठी डंडा लिये हुए, आया !

आया—और तू यहीं खड़ा है चेतुआ। अरे जल्दी जा दौड़कर चौकीदार से कह कि थाने में खबर कर दे। क्या मालूम क्या भगड़ा हो जाये। जल्दी जा। लाठी चल गयी तो बीरेन बाबू घिर जायेंगे। जल्दी दौड़ जा।

(चेतू तेजी से जाता है।)

हेमलता—मैं भी जाऊँगी, आया। बीरेन अकेले।

आया—न बीबी जी, तुम्हें न जाने दूँगी। (जाते हुए चेतू को पुकारते हुए) चेतू, लौटते वक्त जलसे में भाँकता आइयो (हेम से) हेम बीबी, कहाँ की इल्लत मोल ले ली बीरेन बाबू ने !

हेमलता—उनकी बात तो सब लोग सुनेंगे।

आया—बीबी जी, तुमने अभी तक नहीं समझा गाँव-गाँवई के मामलों को। यहाँ भलेमानसों का बस नहीं है। अपना तो वही कलकत्ता अच्छा था।

हेमलता—(झिड़कते स्वर में) आया तुम तो बस.....

आया—मैं ठीक कह रही हूँ बीबी जी। अभी तुम लोगों को पन्द्रह दिन हुए हैं यहाँ आये। देख लो, बड़े सरकार की तबीयत ऊबी-सी रहती है। चौधरी न हों तो एक दिन काटना मुश्किल हो जाय। और तुम हो.....

हेमलता—मुझे तो अच्छा लगता है। कई स्केच बना चुकी हूँ।

आया—अरे, तसवीरें तो तुम कलकत्ते में भी बना लोगी। अनगिनती और इनसे अच्छी।

हेमलता—तुम तो, आया, उलटी बातें करती हो। आखिर हम लोग गाँव की ही औलाद हैं। यह धरती हमारी माँ है। अब हम लोग फिर यहाँ आकर रहना चाहते हैं। इसकी गोदी में आना चाहते हैं।

आया—अब बीबी जी इतनी हुसियार तो मैं हूँ नहीं जो तुम्हें समझा सकूँ। पर इतना कहे देती हूँ कि उखाड़े हुए पौधे की जड़ में हवा लग जाय तो फिर दुबारा ज़मीन में गाड़ना बेकार है। उसके फूल तो बँगले के गुलदस्तों की ही शोभा बढ़ायेंगे।

हेमलता—(अचंभित आया को देखती रह जाती है) आया तुम्हारी बात...तुम्हारी बात...खौफ़नाक है !

(नेपथ्य से आवाज़ें 'इधर...इधर...ले आओ, सम्हालकर...

चेतू तुम हाथ पकड़ लो...इधर...इधर')

आया—हैं ! यह कौन आ रहा है ? (बाहर की ओर देखते हुए) अरे यह तो बीरेन बाबू को पकड़े दो आदमी चले आ रहे हैं ! घायल, हो गये क्या ? बाप रे !.....

(दौड़कर बाहर की तरफ़ जाती है ।)

हेमलता—(घबड़ाकर) बीरेन, बीरेन ! (बँगले की तरफ़ पुकारते हुए) ...पापा जी, पापा जी इधर आइए !

राय साहब—(नेपथ्य में) क्या हुआ ?

हेमलता—बीरेन घायल हो गये। ओह.....

[बेहोश बीरेन को लाठियों के स्ट्रेचर पर सम्हाले हुए, चेतू और एक व्यक्ति, जिसकी अपनी बाँह पर घाव है, प्रवेश करते हैं। वह इस परिस्थिति में भी स्थिरचित्त जान पड़ता है। उसकी वेशभूषा चेतू की-सी है।

आया—(घबड़ाई हुई) चेतू, ये तो बेहोश हैं। हाय...राम !

(स्ट्रेचर ज़मीन पर रख दी जाती है ।)

व्यक्ति—घबड़ाइए नहीं।

हेमलता—(स्ट्रेचर के पास घुटने टेकती हुई) बीरेन ! बीरेन !

(राय साहब घबड़ाये हुए प्रवेश करते हैं ।)

राय साहब—क्या हुआ ? हैं ! यह तो बेहोश हैं ।...चेतू क्या हुआ ?

चेतू—सरकार दोनों पार्टी के लठैत भिड़ गये । बीच में आ गये बीरेन बाबू । वह तो लोचन भैया ने जान पर खेलकर बचा लिया

वरना.....

व्यक्ति—इन्हें फौरन मकान के अन्दर पहुँचाइए । पट्टी-बन्दी है घर में ?

हेमलता—बीरेन ! बीरेन !

राय साहब—आया जल्दी अन्दर ले चलो ।.....चेतू सग़्गलकर लिटाना । हेम, मेरी ऊपर वाली आलमारी में लोशन है, जल्दी...

जल्दी.....(बीरेन को पकड़कर आया, चेतू और हेम जाते हैं)

और यह लोचन कौन है ?

व्यक्ति—मेरा ही नाम लोचन है ।

राय साहब—तुमने बड़ी बहादुरी का काम किया । यह लो दस रुपये और ज़रा दौड़ जाओ, थाने के पास ही डाक्टर रहते हैं ।

लोचन—आप रुपये रखें । मैं डाक्टर के पास पहले ही ख़बर भेज आया हूँ । आते ही होंगे ।

राय साहब—(कुछ हतप्रभ) तुम...तुम इसी गाँव के हो ?

लोचन—हूँ भी और नहीं भी ।...आप बीरेन बाबू को देखें ।

राय साहब—(संकुचित होकर) हाँ...आँ...हाँ.....

[जाते हैं । लोचन कमर में बँधे कपड़े को फाड़कर, अपनी बायीं भुजा में बहते हुए घाव पर पट्टी बाँधता है, तसबीर को सीधा उठाकर रखता और ग़ौर से देखता है । इतने में तेजी से हेमलता का प्रवेश ।]

हेमलता—तुम्हारा ही नाम लोचन है ?

लोचन—जी !

हेमलता—तुम्हीं ने बीरेन की जान बचायी है। (प्रसन्न स्वर में) ये होश में आ गये हैं। हम लोग बड़े एहसानमन्द हैं।

लोचन—(स्पष्ट स्वर में) जान मैंने नहीं बचायी।

हेमलता—तुम्हारी बाँह पर भी तो चोट है।

लोचन—जान उन गरीब सुसहरो ने बचायी है जिनसे ज़मीन छीनकर बीरेन बाबू ग्रामोद्धार-समिति का भवन बनवा रहे हैं ! जब समिति के क्रांतिकारी नौजवान आपस में लाठी चला रहे थे, तब यही गरीब बीरेन बाबू को बचाने के लिए मेरे साथ बड़े। (व्यंग्यपूर्ण मुस्कान) क्रांति का दीपक बच गया !

हेमलता—(हिचकिचाती हुई) तुम...आप पढ़े-लिखे हैं ?

लोचन—पढ़ा-लिखा ? (वही मुस्कान) हाँ, हूँ भी और नहीं भी ।...
अच्छा चलता हूँ ? हाँ, यह तस्वीर आपने बनायी है ?

हेमलता—कोई त्रुटि है क्या ?

लोचन—नहीं ! आपने हमारे नाच की गति को रेखाओं और रंगों में खूब बाँधा है। और.....

हेमलता—और ?

लोचन—कोने में खड़े छाया में लपेटे ये व्यक्ति.....

हेमलता—कैसे हैं ?

लोचन—(बिना झिझक के) जैसे अपनी ही ज़ज़ीरों से बँधे बन्दी !

हेमलता—बन्दी ! क्यों ?

लोचन—(वही मुस्कान) यह फिर बताऊँगा ! (चलते हुए) अच्छा नमस्ते !

[लोचन चला जाता है। हेमलता अचरज में खड़ी रह जाती है। फिर चित्र उठाकर घर की तरफ़ जाती है।]

हेमलता—(जाते-जाते मंद स्वर में) बन्दी । अपनी ही जंजीरों में बंधे बन्दी...

(पर्दा गिरता है ।)

तीसरा दृश्य

[वही स्थान । एक हफ्ते बाद । समय संध्या । नौकर लोग मकान से बगीचे में होकर बाहर की ओर सामान लाते नज़र पड़ते हैं । कभी-कभी आया की दबंग आवाज़ सुन पड़ती है, कभी चेतू की, कभी और लोगों की]

“वह बिस्तरा दो आदमी पकड़ो !”

“समहालकर भई ।”

“बक्से में चीनी के बर्तन हैं ।”

“जल्दी...जल्दी ।”

“यह टोकरी दूसरे हाथ में पकड़ो !”

[घर की तरफ़ से आया का व्यस्त मुद्रा में जल्दी-जल्दी आना । बाहर से चेतू आता है ।]

आया—सब सामान लद गया चेतू ?

चेतू—हाँ आया ! बस, बड़े सरकार का अटेची रहा है । उनके आने पर बन्द होगा ।

आया—कहाँ गये सरकार ?

चेतू—चौधरी जी के यहाँ विदा लेने । सुना है चौधरी के बचने की उम्मीद नहीं ।

आया—जिस गाँव में भतीजा अपने चचा पर वार कर बैठे वहाँ ठहरना धरम नहीं ।

चेतू—अभी ज़मानत नहीं मिली बालेश्वर बाबू को ।

आया—अब हमें क्या मतलब ! हम तो कलकत्ते पहुँचकर शांति की साँस लेंगे ।

चेतू—शांति !

आया—तू तो बुद्धू है चेतू । चल कलकत्ते । मौज उड़ायेगा । देखेगा बहार और बजायेगा चैन की बंसी ।

चेतू—गाँव छोड़कर ? नौकरी ही करनी है तो अपनी धरती पर करूँगा ।

आया—अरे, शहर में नौकरी भी न करेगा तो भी रिकशा चलाकर डेढ़-दो सौ महीना कमा लेगा ।

चेतू—डेढ़-दो सौ ?

आया—हाँ, और रोज़ शाम को सनीमा । होटल में चाय । चकचकाती सड़कें, जगमगाते महल । ठाठ से रहेगा ।

चेतू—(विरक्त मुद्रा) खाना किराये का, रहना किराये का और बोली भी किराये की ।

आया—जैसी तेरी मर्जी । भुगत यहीं देहात के संकट ।

चेतू—लोचन भैया तो कहत.....

आया—(किड़कती हुई) चल, चल, लोचन भैया के बाबा ! अन्दर जाकर देख, बीरेन बाबू तैयार हों तो सहारा देकर लिवा ला । हेम बीबी तो तैयार हैं ?

चेतू—अच्छा ।

(अन्दर जाता है ।)

आया—(जाते-जाते) देखूँ गाड़ी पर सामान ठीक-ठीक लदा है या नहीं । ये देहाती नौकर.....

[बाहर जाती है । थोड़ी देर में राय साहब और लोचन का बातें करते हुए बाहर से प्रवेश ।]

राय साहब—भई लोचन, मुझसे यहाँ नहीं रहा जायेगा । अच्छा हुआ जाते वक्त तुम आ गये । बीरेन ने तुम्हे देखा नहीं । चलते वक्त

उस दिन के एहसान के लिए.....

लोचन—मैंने सोचा था कि आप लोग रुक जायेंगे ।

राय साहब—रुकना ? आया तो इसी विचार से था कि कलकत्ते के बाद देहात में ही दिन काटूंगा । लेकिन एक महीने में देख लिया कि हम तो इस दुनिया से निर्वासित हो चले । बरसों पहले की दुनिया उजड़ गयी और मैं जिस समाज में बसने आया था, वह ख़्वाब हो चला । चौधरी भी शायद उसी ख़्वाब के भटके हुए टुकड़े थे । अभी उन्हें देखकर आ रहा हूँ । उम्मीद नहीं बचने की । उस दिन के झगड़े में बालेश्वर ने उन पर लाठी से वार नहीं किया । दिल को भी चकनाचूर कर दिया ।

लोचन—बालेश्वर ही गाँव की नयी पीढ़ी नहीं है ।

राय साहब—(निराश स्वर) मैं नहीं जानता कि कौन नयी पीढ़ी है । बस इतना देखता हूँ कि रैयत के सुख-दुख में हाथ बटाने वाला ज़मींदार, पुरखों के तजुर्बे के रत्नक बुज़ुर्ग, बेफ़िक्री की हँसी और बड़ों की इज्जत में पले हुए नौजवान—जब ये सब ही नहीं रहे तो गाँव में ठहरकर मैं क्या करूँ ! शहर.....

लोचन—शहर आपको खींच रहा है राय साहब !

राय साहब—(लाचारी का स्वर) तुम शायद ठीक कहते हो । शहर मुझे खींच रहा है ।

लोचन—और आप बेवस खिंचे जा रहे हैं ।

राय साहब—(पीड़ित मुद्रा) बेवस...बेवस...ऐसा न कहो लोचन, ऐसा न कहो !...हम जा रहे हैं क्योंकि...क्योंकि.....

(चेतू का सहारा लिये बीरेन का प्रवेश, साथ में हेम भी है ।)

बीरेन—पापा जी, अब आप ही की देरी है ।

राय साहब—(मानो मुक्ति मिली हो) कौन ? बीरेन, हेम ! तैयार हो गये तुम लोग ? तो मैं भी अपनी अटेची ले आता हूँ । चेतू मेरे

साथ तो चल !

(घर की तरफ़ प्रस्थान । साथ में चेतू)

लोचन—(हेमलता से) नमस्ते !

हेमलता—कौन ?...अच्छा आप ? बीरेन, यही हैं लोचन जिन्होंने उस रोज़ तुम्हें बचाया था ।

बीरेन—अच्छा !...उस दिन तो तुम्हें देखा नहीं था, लेकिन फिर भी (गौर से देखते हुए) तुम पहचाने-से लगते हो ।

लोचन—(मुस्कराते हुए) कोशिश कीजिए । शायद पहचान लें ।

बीरेन—(सोचता हुआ) तुम...वह...वह...नहीं नहीं । वह तो ऊँची जात का, ऊँचे कुल का आदमी था ।

हेमलता—कौन ?

बीरेन—मेरा कालेज का साथी एल० एस० परमार ।

लोचन—(मुस्कराहट) एल० एस० परमार ।...लोचन सिंह परमार ।

बीरेन—(चौंककर) एं ! परमार...परमार !!

लोचन—(अविचलित स्वर में) हाँ मैं परमार ही हूँ, बीरेन ।

हेमलता—(विस्मित) बीरेन यह तुम्हारे कालेज के साथी हैं ?

बीरेन—(लोचन का हाथ पकड़कर) यक्रीन नहीं होता परमार, कि तुम्हीं हो इस देहाती वेश में, मुसहरों के बीच । कालेज छोड़कर तो तुम ऐसे गायब हुए थे कि.....

लोचन—(किंचित हँसी) एक दिन मैंने तुम लोगों को छोड़ा था और आज (रुककर) आज, तुम जा रहे हो ।

बीरेन—परमार, मैं जा रहा हूँ चूँकि मैं अपने आदर्श को खंडित होते नहीं देख सकता ।

लोचन—आदर्श ? कौन-सा वह आदर्श है जिसे गाँव खंडित कर देगा ?

बीरेन—क्रांति का आदर्श परमार । मैं भूल गया था कि देहाती की मध्य-युगीन ऊसर भूमि अभी क्रांति के लिए तैयार नहीं है । उसके लिए

जरूरत है शहर और कारखानों की सजग और चेतनाशील भूमि की ।.....

लोचन—(तीव्र दृष्टि) बीरेन, तुम भाग रहे हो ।

बीरेन—मैं लाठियों की मार से नहीं डरता लोचन ।

लोचन—तुम भाग रहे हो लाठियों के डर से नहीं, बल्कि उन गुट-बन्दियों, अंधविश्वास और भगड़े-क्रसाद की दल-दल के डर से, जिसे तुम एक छलांग में पार कर जाना चाहते थे । (गम्भीर चुनौतीपूर्ण स्वर में) तुम पीठ दिखा रहे हो, बीरेन !

बीरेन—(हठात् विचलित) पीठ दिखा रहा हूँ...नहीं...नहीं...यह गलत है ।...हम जा रहे हैं, क्योंकि...क्योंकि.....

(आया का तेज़ी से प्रवेश)

आया—हेम बीबी ! बीरेन बाबू !! अरे आप लोगों को चलना नहीं है क्या ? सारा सामान रवाना भी हो गया । कहीं गाड़ी छूट गयी तो कहाँ हैं बड़े सरकार ? आप लोग भी ग़ज़ब करते हैं ।—

(राय साहब का प्रवेश, साथ में चेतू अटेची लिये हुए)

राय साहब—यह आ गया मैं । चलो भाई, आया । बीरेन, तुम चेतू का सहारा लेकर आगे बढ़ो, पहले तुम्हें बैठना है ।

बीरेन—मैं चलता हूँ परमार ! फिर कभी.....

लोचन—फिर कभी (किंचित हँसी) फिर कभी ?...

[आया अटेची लेती है, चेतू का सहारा लिये हुए बीरेन बाहर जाता है । पीछे-पीछे आया]

राय साहब—अच्छा भाई लोचन, हम भी चलते हैं ।...मुमकिन है तुम्हारा कहना सही हो !

लोचन—काश मैं आपको रोक पाता !—

राय साहब—हेम, तुम्हारी तसवीर उधर कोने में रखी रह गयी ।

हेमलता—अभी लायी पापा, आप चलिए ।

राय साहब—अच्छा !

(चलते हैं ।)

लोचन—आप भी जा रही हैं हेमलता जी ।

हेमलता—मजबूर हूँ ।

लोचन—मैं जानता हूँ । बीरेन का मोह ।

हेमलता—मैं बीरेन को यहाँ रख सकती थी लेकिन.....

लोचन—लेकिन

हेमलता—(सत्य की खोज से अभिभूत वाणी) लेकिन एक बात है जिसे न पापा समझते हैं न बीरेन । पर मैं कुछ-कुछ समझ रही हूँ । पापा गाँव को लौटे प्रतिष्ठा और अवकाश में सराबोर होने । बीरेन ने देहात को क्रांति की योजना का टीला बनाना चाहा और मैं...मैं गाँव की मोहक भाँकी में कल्पना का महल बनाने को ललक पड़ी ।

लोचन—महल मिटने को बनते हैं, हेम जी ।

हेमलता—यह मैं जानती हूँ, लेकिन हम तीनों यह न समझ सके कि हमारी जड़ें कट चुकी हैं, हम गाँव के लिए बिराने हो चुके हैं ।...

(आविष्ट स्वर) क्या आप इस दुविधा, इस उलझन, इस पीड़ा के शिकार नहीं हुए हैं ? एक तरफ़ गाँव और दूसरी तरफ़ नागरिक शिक्षा-दीक्षा और सभ्यता की मजबूत जकड़ । उफ़, कैसी भयानक है यह खाई जिसने हमारे तन, हमारे मन, हमारे व्यक्तित्व को दो टूक कर दिया है ? बताइए कैसे यह दुविधा मिट सकती है ? कैसे हम धरती की गंध, धरती के स्पर्श को पा सकते हैं ? बताइए ।... बताइए !

आया—(नेपथ्य में) हेम बीबी, हेम बीबी जल्दी आओ देरी हो रही है ।

लोचन—आपके प्रश्न का उत्तर मेरे पास है, लेकिन आप तो जा रही हैं ।

हेमलता—जाना ही है। आप मेरे लिए पहेली ही बने रहेंगे !...वह तसवीर आपके लिए छोड़े जा रही हूँ। नमस्ते।

(जाती है।)

लोचन—(कुछ देर बाद आप ही आप धीरे-धीरे) पहेली...(तसवीर उठाता है) और ये बन्दी ! (तसवीर की ओर एकटक देखता है) मैं जानता हूँ—(गहरी साँस)...मैं जानता हूँ कि कौन-सी जंजीरें हैं जो इन्हें बन्द किये हैं। (नेपथ्य में ताँगे के चलने की आवाज़) जा रहे हैं वे लोग !...और मैं बता भी न पाया !...कैसे बताऊँ !...कैसे बताऊँ कि यह कुदाली और ये मेहनत-कश हाथ, यही वे तिलिस्म हैं जिससे मैं धरती के भेद पाता हूँ। ये मेरी आज़ाद दुनिया के संदेश-वाहक हैं, यही वह वाणी है जो मुझे गरीबी के लोक में अपनापन देती है।...(रुककर) तुम लोग जा रहे हो। बचकर भाग रहे हो...लेकिन मैं ?...क्या मैं अकेला हूँ ? (विश्वासपूर्ण स्वर) अकेला ही सही, लेकिन बन्दी तो नहीं।

[इस बीच में चेतू आकर खड़ा-खड़ा लोचन की स्वगत-वार्ता को सुनने लगता है।]

चेतू—लोचन भैया।

लोचन—कौन ?

चेतू—लोचन भैया, आप तो अपने-आप ही बातें करते हैं।

लोचन—चेतराम !...मैं भूल गया था।

चेतू—क्या भूल गये थे भैया ?

लोचन—कि मैं अकेला नहीं हूँ।

चेतू—अकेले ?

लोचन—हाँ और यह भी भूल गया था कि हमारी दुनिया में बेकार बातें करने का समय नहीं है।

चेतू—काम तो बहुत है ही भैया। अब वह ज़मीन वापस मिली है तो—

लोचन—चलो, चेताराम तलहटी वाली जमीन पर खुदाई शुरू करें,
आज ही ।

चेतू—जी बाँस के झुरमुट भी तो लगायेंगे ।

लोचन—हाँ और बाँध भी बाँधेंगे ।

चेतू—अगली बरखा तक खेत तैयार करेंगे ।

लोचन—(उल्लासपूर्ण वाणी) चलो हम रोज़ साँभ को अपने पसीने
के दर्पण में कभी न मिटने वाली झाँकी देखेंगे । चलो चेताराम !

[कन्धे पर कुदाली और बगल में चेताराम को लेकर प्रस्थान
करता है । नेपथ्य में वाद्य-संगीत जो ओजस्विनी लय में परिवर्तित
हो जाता है ।]

आवाज़ का नीलाम



धर्मवीर भारती

पात्र

दिवाकर—एक पत्रकार

बाजोरिया—एक सेठ

घटना-काल : १९४७ में स्वतंत्रता मिलने के बाद

['आवाज़'-सम्पादक दिवाकर का कमरा । एक तरफ़ एक तख़्त । बड़ी सी मेज़ पर अग्न्यार, कागज़, सोफ़्टा, पिन-कुशन, ऐश-ट्रे, टेबल-कैलेंडर वगैरह बहुत अस्तव्यस्त हालत में । कागज़ बिखरे हैं, पेपर-बेट ऐश-ट्रे पर रक्खा है, पिन-कुशन घ्रात्नी है, पिनें मेज़ पर पड़ी हैं, सिगरेट की राख पिन-कुशन के पास इकट्ठा है । बग़ल में एक तिपाई पर टेब्लीक्रोन रक्खा है ।

मेज़ के पीछे दीवार पर सुभाष बोस का बहुत भव्य चित्र लगा है, जो गर्द और मैल से धुँधला पड़ गया है । तसवीर के नीचे ही दीवार में साप्ताहिक 'आवाज़' की फ़ाइल टँगी है । एक दूसरी कील पर दिवाकर का कोट ।

मेज़ पर पैर फैलाये हुए दिवाकर अपनी कुर्सी पर बैठा है । मैला पैंट, कमीज़ के बटन खुले हुए, सिगरेट ऐश-ट्रे के सहारे रक्खी हुई सुलग रही है । बाज़ बिखरे हुए, काज़र अस्तव्यस्त, सिर कुर्सी की पीठ पर टिका हुआ, झौंखें झूत पर टिकी हुई, सूनी-सूनी विचित्र-सी मुद्रा । सामने ही एक झोटा-सा जापानी ट्वाय-पियानो रक्खा है जिसे वह

अपने फार्कटेनपेन से टुनटुना रहा है। लम्बी-लम्बी गहरी साँसें, उचटा-उचटा हुआ सा अमंगल वातावरण। सहसा टेलीफोन की घंटी बज उठती है। वह चौंका हाथ में उठा लेता है :]

दिवाकर—हलो.....कौन, बाजोरिया जी.....हाँ यहीं हूँ।...नहीं अस्पताल नहीं गया, आपरेशन तो सुबह हुआ था...जी, जब मैं आया तब तो वाइफ को नींद आ गयी थी...हाँ आज भर खतरा है...देखें क्या होता है...हाँ, आप आइए...हाँ, हाँ, कोई बात नहीं...अच्छा अच्छा...मैं यहीं हूँ, बड़ी कृपा। (टेलीफोन रख देता है, दाँत पीसकर टेलीफोन की ओर देखता हुआ) कृपा ! बेईमान, कमीना, मैं खूब समझता हूँ तुम्हारी कृपा। आज १० साल से जब मैंने अपनी एक-एक हड्डी जलाकर अस्त्रवार निकाला; सरकार से लड़ा, सेठों से लड़ा, ज़मानते दीं, घर बिक गया, बीबी सूखकर कंकाल हो गयी, तब किसी ने दया नहीं दिखायी। मैंने किसी के सामने सिर झुकाना जी नहीं सीखा था। आज ज़ब्र अस्त्रवार वेच रहा हूँ तो दिन में तीन-तीन मर्तबा टेलीफोन से पूछा जाता है। कितनी चिन्ता है सेठ बाजोरिया को ! पाँच मिनट में आ रहे हैं, (गहरी साँस लेकर) पाँच मिनट ! (पेन से पियानो के पर्दे झंकारता है और गिनता जाता है—) एक...दो...तीन...चार...पाँच मिनट (उठकर दीवार पर से 'आवाज़' की फ़ाइल उतारता है। उसे बच्चों की तरह गोद में लेकर टहलता है) बस पाँच-दस मिनट और ! उसके बाद तुम मेरे नहीं रहोगे ! मैं दस्तख़त कर दूँगा और तुम बिक जाओगे। कितनी साध से मैंने तुम्हें निकाला था, कितनी लगन से, कितनी मुसीबतें भेलकर तुम्हें चलाया था। याद है तुम्हें ! जब तुम्हारा विशेषांक निकल रहा था और शीला सीढ़ी पर से गिर पड़ी थी, लेकिन मैं उसके पास नहीं था। याद है जब शीला की दवा के रुपये से मैंने सत्तार-प्रेस वाला टाइप खरीद लिया

था। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ भूल गया था, अपने को, अपनी फूलों जैसी बच्ची को, अपनी शीला को, महज़ इसलिए कि तुम मेरी आत्मा वी आवाज़ बन सको, मेरी नंगी-भूखी जनता की आवाज़ बन सको। सत्य की आवाज़ बन सको। लेकिन नहीं...अब तुम बाजोरिया की आवाज़ बनोगे। (आवेश से) तुम्हारा नीलाम होगा। (नीलाम करने वालों की-सी आवाज़ में) आवाज़, आवाज़, जनता की आवाज़, आत्मा की आवाज़, सच्चाई की आवाज़। नीलामी बोली ६ आना, साढ़े ६ आना, साढ़े ६ आना एक..... साढ़े ६ आना दो—(पियानो पर ठुनकी मारता है) साढ़े ६ आना तीन! (कुर्सी पर धम्म से बैठ जाता है, गिर-सा पड़ता है। दो चण की खामोशी। फिर एक अजब-सी हँसी, लुटी-लुटी हुई सी...सहसा फ़ोन की घंटी बजती है। साथ ही बाहर मोटर के आने की, हार्न की और मोटर का दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़। वह फ़ोन उठाता है) हलो...मैं हूँ दिवाकर, कहिए...हाँ...हाँ, अच्छा शीला जाग गयी है?...मुझे बुला रही है...ठीक, मैं अभी आया...हालत ठीक नहीं है?...कोई ख़तरा नहीं। तब ठीक है।...अच्छा, कोई बात हो तो फ़ोन करना.....

[इसी बीच मैं सेठ बाजोरिया आते हैं। खहरधारी, बहुत स्थूलकाय नहीं। चेहरे पर शालीनता। आते ही पूछते हैं, 'कहिए मिस्टर दिवाकर!' फिर दिवाकर को फ़ोन करते हुए देखकर 'ओह' कहकर रुक जाते हैं, दिवाकर के संकेत करने पर बैठ जाते हैं।]

बाजोरिया—(दिवाकर के फ़ोन कर चुकने पर) क्या हाल है वाइफ़ का ?

[दिवाकर एक अजब-से तीखे गुस्से और नपुंसक लाचारी से उसकी ओर देखता है, फिर एक अजीब-सी हँसी-हँसकर बैठ जाता है। कुछ जवाब नहीं देता। सिर झुकाकर बैठ जाता है और पेन से

पियानो को खंकारने लग जाता है ।]

बाजोरिया—(और आगे कुर्सी खिसकाकर, चेहरे पर बहुत आत्मीयता लाकर, स्वर में बहुत सहाजुभूति भरकर) क्या बात है दिवाकर जी ? समर्थग सीरियस ?

दिवाकर—कोई बात नहीं है सेठ जी ! (गहरी साँस लेकर) बात क्या होती । मेरी कुछ अज़ब-सी आदत है । जब मन बहुत परेशान होता है तो यह पियानो बजाने लगता हूँ । जाने क्यों...लेकिन...आप सोचते होंगे...

बाजोरिया—(कुछ मुस्कराकर) नहीं, नहीं, नर्वस-टेन्शन में अक्सर ऐसा होता है । लेकिन यह बच्चों का पियानो ?

(हँसता है, दिवाकर भी हँसता है ।)

दिवाकर—(पियानो बटाकर) क्या बताऊँ ? अखबार की दुनिया में रोज़ खबरें आती हैं । हड़तालों के नारे, लड़ाइयों का शोरगुल, सेनाओं की परेडें, जंगी जहाज़ों का घेरावा, लेकिन मुझे सब इतने बेमानी, इतने खोखले लगते हैं जितने इस बचकाने खिलौने के स्वर । लेकिन कभी-कभी लगता है, इन्हीं ध्वंस और विनाश की आवाजों में कहीं नये इंसान की आवाज़ का भी निर्माण हो रहा है । मैंने सोचा उस आवाज़ को ज़िन्दा रखने के लिए, उसे ऊपर लाने के लिए मैं अपनी हस्ती को मिटा दूँगा, वही आवाज़ मेरी ज़िन्दगी होगी । इसीलिए.....

बाजोरिया—शायद इसीलिए आपने अपने अखबार का नाम 'आवाज़' रखला था ।

दिवाकर—जी हाँ ! और इस आवाज़ के लिए अपने को बर्बाद कर दिया था, लेकिन जनता नये इंसान की आवाज़ नहीं सुनना चाहती । उसे सन्चाई की आवाज़ नहीं चाहिए । उसे चाहिए शोष कवर, भड़कीले चित्र, रंग-बिरंगे विशेषांक...वह सब जो उसे

सेठ बाजोरिया के अखबार में मिलता है ।

बाजोरिया—देखिए ! यह पर्सनल-रिमार्क आपको शोभा नहीं देता दिवाकर जी, आप मुझे बिलकुल ग़लत समझ रहे हैं । मेरा क़तई यह इरादा नहीं कि मैं जनता को गुमराह करूँ । बात यह है दिवाकर जी कि मुझे साहित्य और पत्रकारिता से कुछ इतना लगाव है कि दिन-रात मैं सोचता हूँ कि हमारे यहाँ भी अमरीका की तरह सजे-सजाये अख़बार निकलें, सस्ते से सस्ते, सुन्दर-से-सुन्दर । ज्यादा-से-ज्यादा जनता उन्हें पढ़े । उसका सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो ।

दिवाकर—सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो ? (व्यंग्य से हँसकर) इधर तमाम लोगो को सांस्कृतिक स्तर सुधारने की बीमारी लगी है । कोई 'टाइम्स' खरीद रहा है, तो कोई 'लाइमलाइट' ? आप...

बाजोरिया—(बात काटकर) मैं भी 'आवाज़' खरीदकर वहाँ करना चाहता हूँ, यही मतलब है न आपका ? (कड़े स्वर में) मिस्टर दिवाकर ! दुनिया भी कितनी स्वार्थी, कितनी एहसान-फ़रामोश होती है । (उठकर टहलने लगता है) आपको ज़रूरत थी, आपने सन्देशा कहलाया था, आप इस वक्त मदद चाहते थे । और जब मैं 'आवाज' के शेयर खरीदने के लिए राजी हो गया तो आप इस तरह चोटें कर रहे हैं । (मुड़कर, खड़े होकर) शायद आप समझ नहीं रहे हैं कि आप अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं ।

दिवाकर—(सुस्त पड़कर, पियानो पर सिर रखकर) भूल गया था मैं । गरजमन्द मैं हूँ, आप तो ग्राहक हैं । आपकी तो चार-बात.....

बाजोरिया—(मेज़ पर झुककर बड़े मुलायम स्वर में) नहीं-नहीं, मेरा यह मतलब.....

दिवाकर—नहीं, मैं समझता हूँ । महीने भर से मेरी पत्नी की बीमारी पर आपने पानी की तरह रुपया बहाया है.....

बाजोरिया—(कुर्सी पर बैठकर) छी:-छी: दिवाकर जी ! ऐसी बातें

कहकर जलील न कीजिए । (बहुत स्नेह के उसका हाथ अपने हाथ में लेकर) यह मैंने आप पर अहसान नहीं किया है । आपने अपनी जिन्दगी में जितना त्याग किया है, जितनी साधना की है, उसके लिए हमारे दिल में कितनी श्रद्धा है, यह आप समझ भी नहीं सकते ।

दिवाकर—(पियानो टुनकारते हुए) अच्छा है मैं न समझ सकूँ, बाजोरिया जी । अब साधना और तपस्या के दिन भी तो नहीं रह गये । अब कमल की शान और विचारक की आज्ञादी का भी तो कोई अर्थ नहीं रहा । अब तो अगर मैं आपके पत्र में हूँ तो आपका ढोल बजाऊँ, उसके पत्र में हूँ तो.....

बाजोरिया—(थोड़ा अप्रतिभ हो जाता है) मैं और लोगों की बात नहीं जानता, लेकिन जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, कम-से-कम आपसे मैं इस तरह की बात सुनने की उम्मीद नहीं करता था । पाँच अखबार हैं मेरे । क्या आप बता सकते हैं कि मैंने किसी के सम्पादक पर कभी कोई प्रतिबन्ध लगाया है ?

दिवाकर—(ठंडे फ़ौलाद के से स्वर में) बाजोरिया जी, किसी आदमी का सबसे बड़ा गुनाह यह है कि वह दूसरे आदमी को अपने बारे में सच बोलने के लिए मजबूर कर दे ।

बाजोरिया—(भौंह सिकोड़कर) क्या मतलब ?

दिवाकर—क्या मतलब...(तैश से) क्या आप कह सकते हैं कि आपने प्रतिबन्ध नहीं लगाया है ? चैटर्जी ने उस दिन गृह-मंत्री के वक्तव्य पर टिप्पणी लिखी थी । उस पर किसने चैटर्जी को कमरे में बुलाकर डाँटा था ?

बाजोरिया—(तैश में मेज़ पर हाथ पटककर) यह गलत बात है ।

दिवाकर—यह सही बात है । आप जानते हैं, जब चैटर्जी को ६० रुपए मिलते थे तब वह सम्पादकीय लिखता था, आज जब आप उसे

ढाई सौ दे रहे हैं तब वह डिक्टेशन लिखता है। आपका डिक्टेशन, जिसने अपनी ज़िन्दगी में सिवा बहीखाते के कुछ भी न लिखा होगा.....

बाजोरिया—लेकिन.....

दिवाकर—लेकिन क्या ? आप मालिक हैं, आप उसे डाँट सकते हैं, उसे जिसके बाल अखबार नवीसी में सफ़ेद हो चुके हैं।

बाजोरिया—(दोनों मुठियाँ बाँधकर, बड़ी खीज से) मुझे अफ़सोस है मिस्टर दिवाकर कि आप भी अधकचरे साम्यवादियों की तरह बातें करने लगे हैं। हर चीज़ को एक ही पहलू से आप क्यों देखते हैं ? अगर मैंने चैटर्जी को डाँटा भी तो उसमें कोई पूँजीवादी नीति तो नहीं थी।

दिवाकर—(बड़े तीखे व्यंग्य से) नहीं जी, उसमें तो गाँधीवादी अध्यात्म था।

बाजोरिया—दिवाकर जी, (उठकर टहलने लगता है) उसमें गाँधीवादी अध्यात्म नहीं, लेकिन कम-से-कम वैयक्तिक सम्बन्धों की बात तो ज़रूर है। गृह-मंत्री मेरे मित्र हैं। क्या आप चाहेंगे कि आपके पत्र में आपके मित्रों की बुराई निकले ?

दिवाकर—ओफ़फ़ोह ! आज गृह-मंत्री आपके मित्र हैं...लेकिन सन् ४२ में गृह-मंत्री आपके मित्र नहीं थे, जब पुलिस उन्हें हथकड़ियाँ पहनाकर आपके दरवाज़े से ले गयी थी ! उस दिन आप उनसे दौड़कर गले नहीं मिले थे.....उस दिन तो आप मिलीटरी के लिए ठीके ले रहे थे और आपके अखबार अँग्रेज़ी सरकार का विज्ञापन छाप रहे थे कि काँग्रेसवाले गुंडे हैं। कम-से-कम चैटर्जी ने गृह-मंत्री को गुंडा तो नहीं लिखा था।

बाजोरिया—(टहलते-टहलते) चैटर्जी की बात जाने दीजिए दिवाकर जी, उसके साथ सैकड़ों बातें हैं। असलियत समझना दूसरी बात है,

व्यंग्य करना दूसरी बात । अगर आपका कोई अस्त्रवार होता...
 दिवाकर—गोया यह आपका अस्त्रवार है !

(टेलीफोन की घंटी बजती है ।)

बाजोरिया—ओह, माफ़ कीजिएगा; मैं भूल गया था ।

दिवाकर—नहीं नहीं, भूल मैं गया था बाजोरिया जी । (टेलीफोन की घंटी) मैंने आपको बुलाया था कि आज अस्त्रवार बेच ही दूँगा । लेकिन नहीं, भीख माँगकर अस्त्रवार निकालूँगा, फर्नीचर बेचकर अस्त्रवार निकालूँगा, अपने खून से छापूँगा, लेकिन आपके हाथ नहीं बेचूँगा । (टेलीफोन की घंटी, तैश में रिसीवर उठाकर फिर पटक देता है) नहीं बेचूँगा । मैं आपका रुपया एक-एक पाई चुका दूँगा...(फिर टेलीफोन की घंटी)

बाजोरिया—(बात काटकर) दिवाकर जी, आप मुझे गलत समझ रहे हैं ।

दिवाकर—मैं खूब समझने लगा हूँ आप लोगो को ! (फिर टेलीफोन की लम्बी रिंग, झल्लाकर उठाता है । हाथ से ठोकर लगकर पियानो गिर जाता है) उफ़, ये भी कम्बख्त आफ़त है । (जोर से झल्लाकर) जी हाँ...जी हाँ...कह तो दिया, जी हाँ...(कड़वे स्वर से) क्या ?.....(सहसा मुखमुद्रा एकदम बदल जाती है) नाड़ी डूब रही है...(बहुत भयभीत स्वर में) बहुत ख़तरा है...(व्यग्र स्वर में) कै फ़ायल लेता आऊँ...तीन इन्जेक्शन ? मैं अभी लेकर आया...किसी तरह बचाइए उसे डाक्टर साहब... मुनिए, मुनिए...(निराश होकर फ़ोन रख देता है—कुछ सोचते हुए) तीन फ़ायल...उन्तालीस रुपया और एक सौ पचीस हु...आ...एक सौ चौवन...नहीं एक सौ चौसठ ।

बाजोरिया—(पास आकर) कैसी हालत है वाइफ़ की दिवाकर जी ?

दिवाकर—(बिना सुने हुए, उसी धुन में) मेरे पास कुल है (खड़े

होकर, जब मैं हाथ ढालकर) अरे कहाँ गये रुपये ?

[सारी मेज़ छान ढालता है, फिर घड़ी देखता है, फिर झाँघर में देखता है । फिर बिल्कुल स्तब्ध-सा खड़ा हो जाता है ।]

बाजोरिया—आप परेशान क्यों हैं ।

[जब से नोटों का बंडल निकालता है, दिवाकर उधर ध्यान ही नहीं देता, स्तब्ध खड़ा है, फिर दौँत पीसकर माथा ठोँकता है ।]

बाजोरिया—दिवाकर जी आप क्या कर रहे हैं । लीजिए ये हैं रुपये, बाहर कार खड़ी है । (कन्धे पर हाथ रखकर) चलिए, जल्दी अस्पताल चलें ।

[दिवाकर बिल्कुल पत्थर की तरह खड़ा रहता है । जैसे वह संज्ञा-शून्य हो, चैतनाहत हो, फिर मुड़कर कोट उतारकर पहनता है, फिर सेठ जी की ओर बढ़ी कातर निगाहों से देखता हुआ, जैसे अभी रो देगा...]

दिवाकर—हालत..... उसकी हालत ठीक नहीं सेठ जी...

बाजोरिया—(घड़ी देखकर) जल्दी कीजिए ।

दिवाकर—(पास आकर, बहुत पास आकर, सेठ जी के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर) आप देवता हैं, आप देवता हैं सेठ जी ! मैं पागल हूँ, मैं पागल हो गया था । अखबार आपका है । पहले मैं कागज़ों पर दस्तखत कर दूँ ।

बाजोरिया—छिः, आप कैसी बात करते हैं । मैं अखबार नहीं...

दिवाकर—(बात काटकर, चीखकर) मैं तो अखबार बेचूँगा । आपने कितना किया है मेरे लिए । आपने शीला की जान बचायी है और मैं आप पर अविश्वास करता हूँ । (चीखते और दौँत पीसते हुए) मैं अहसान फ़रामोश नहीं हूँ, लाइए, कागज़ लाइए ।

[बाजोरिया कागज़ निकालकर देता है । दिवाकर बैठ जाता है । कागज़ खोलकर देखता है, फिर दस्तखत करता है । आवेश कुछ

शांत-सा पढ़ गया है। एक निगाह उठाकर बाजोरिया की ओर देखता है, फिर बड़ी दर्द-भरी मुस्कराहट...।]

दिवाकर—(हाथ उस स्थान पर बढ़ाते हुए जहाँ पियानो रक्खा था) दूसरा कागज ? । पेन से टुन्कारता है, पर पियानो न पाकर कहता है—) अरे ! मेरा पियानो कहाँ गया ? (बाजोरिया उधर इशारा करता है, झुककर नीचे देखता है, फिर हँसकर) डेम इट, कहाँ है दूसरा कागज ?

[पैर से पियानो को ठुकरा देता है। बाजोरिया दूसरा कागज देता है, दिवाकर दस्तग़लत करता है। फ़ोन की घंटी बजती है। दिवाकर दस्तग़लत करके कागज फिर पढ़ता है। फ़ोन की घंटी फिर बजती है। वह कागज मेज़ पर रख देता है। रिसीवर उठाता है। बाजोरिया कागज उठाकर अपने हाथ में लेकर पढ़ने लगता है]

दिवाकर—(फ़ोन पर) हलो...हाँ हाँ, कांहेए न...मैं ही हूँ...माई गॉड ! (टेलीफ़ोन पटककर उछल पड़ता है। बहुत ही उत्साह से—) बाजोरिया ! बाजोरिया जी, कितना दयावान हैं ईश्वर ! कैसे मौके पर वॉह पकड़ता है। मेरा मुसीबतें ख़त्म हो गयीं दोस्त ! मैं अब 'आवाज़' नहीं बेचूँगा। (दाँत पीसकर) माई वाइफ़ इज़ डेड ! बाजोरिया—क्या कह रहे हैं आप !

दिवाकर—(ऊँचे गले से) मैं सच कह रहा हूँ, बाजोरिया जी। अभी उसका हार्टफ़ेल हो गया। (गहरी साँस लेकर) अब 'आवाज़' बेचने की ज़रूरत नहीं।

बाजोरिया—आप पागल हो गये हैं ? वह तो आप बेच चुके, बैनामा मेरे पास है। चलिए जल्दी अस्पताल।

दिवाकर—(फ़ट से मुड़कर मेज़ की ओर देखता है) कहाँ गये कागज़ात ? लाओ उन्हें। मैं नहीं बेचूँगा। शीला की क्रसम, मैं नहीं बेचूँगा।

बाजोरिया—(उन्हें जेब में रखकर) आप पागल हो गये हैं ।

दिवाकर—(चीखकर) हाँ । पागल हो गया हूँ । (पियानो जैसे मारने के लिए उठाकर) सीधे से दे दो वरना...

[खीचकर फेंकता है । बाजोरिया भयभीत होकर पीछे उछल जाता है, पियानो अलग जा गिरता है ।]

बाजोरिया—आप पागल...(दरवाज़े की ओर भागता है, दिवाकर भी—)

दिवाकर—(और चीखकर) हाँ मैं पागल हूँ (भागता है, चीखता हुआ) मेरे कागज़ दे दो, मैं 'आवाज़' नहीं बेचूंगा...

[नेपथ्य में मोटर के स्टार्ट होने और कार का दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़—]

(पर्दा गिरता है ।)

बाहर का आदमी



लक्ष्मीनारायण लाल

पात्र

जंगूसिंह

बलीसिंह

शांतीलाल

माँ (घर के भीतर से)

लाला जी

कल्ली

[जंगल का एक भाग । चबूतरेनुमा धरती के एक आसन पर कपड़ा बिछा है और उसपर काली की भयावह मूर्ति रखी है । सामने पूजा-अर्चना के स्थान पर दो तलवारें और दो बन्दूकें हैं ।

दिन डूबने में ज़रा-सी देर है । पर्दा उठने पर जंगूसिंह (उम्र प्रायः पैंतालिस वर्ष । खूब हष्ट-पुष्ट । व्यक्तित्व से सचमुच सरदार लग रहा है । श्रद्धा से काली की मूर्ति के सामने नत शिर है । बलीसिंह, जिसकी अवस्था पैंतिस-चालीस के बीच में है, दीलत के ढेर पर भूखे सिंह की तरह पिला पड़ रहा है ।]

बली—(मुट्ठी में रुपये उठाकर नीचे हथेली पर उनकी वर्षा करते हुए)
वाह ! वाह !! क्या धोल हैं इसके । इतना सोना ! अहा हा !
छन...छनन.....न... ।

जंगू—(घूमकर) बलीसिंह । पहले काम खत्म कर लो !

बली—काम तो कल रात ही खत्म कर लिया...अब क्या काम ? यह लो चाँदी अलग, सोना अलग !

जंगू—यह हमारा पहला डाका है, बलीसिंह !

बली—सुहरत कहो सुहरत !

जंगू—नहीं, काली माई की कृपा ! पहले माँ काली को सोना चढ़ाओ !

(चढ़ाकर) अब हम डाकू हैं बलीसिंह, चोर नहीं !

बली—चोर तो हम पहले भी नहीं थे !

जंगू—(स-व्यंग्य) नहीं, चोर नहीं थे । किसी के बच्चे को उठा लाना, फिर रुपये वसूल करना (रुककर) छिः, चोरी से भी बदतर !

बली—(एकाएक सावधान होकर खड़ा हो जाता है और झपटकर बन्दूक उठा लेता है) कोई आ रहा है ।

जंगू—हूँ ।... है तो...। कोई लौंडा-सा है ! (रुककर) लेकिन कायर नहीं । अरे, शांतीलाल जैसा लग रहा है (बन्दूक छीन लेता है) शांतीलाल है ।

दायीं ओर से शांतीलाल का प्रवेश—ग्रस्त, तार-तार-सा फटा और टूटा हुआ । आकर चुपचाप डरा-सा एक कोने में खड़ा हो जाता है ।]

जंगू—क्यों ?...कैसे लौट आया ? अब मनहूस, बोलता क्यों नहीं ? क्या बात है रे ?

(शांती मुँह ढिपाकर रो पड़ता है ।)

बली—जनाना कहीं का, रोने लगा ।

जंगू—यहाँ रोने आया है ?

बली—मरने आया है मरने ! पहले बच के चला गया, मरने अब आया है !

शांति—(फूटकर) हाँ सरदार । सच, मैं मरने आया हूँ ।

(दोनों हँस पड़ते हैं ।)

बली—क्यों, अपने घर तक नहीं पहुँचा क्या ?

शांति—घर वालों ने मुझे निकाल दिया ।

जंगू—निकाल दिया ? क्या बकता है ?

शांती—घर वालों ने मुझे नहीं पहचाना !

जंगू—तेरे माँ-बाप ने तुझे नहीं पहचाना ? (क्रोध से) झुट्ठा कहीं का । तू अपने घर तक पहुँचा भी था ?

शांती—जब मैं अपने घर पहुँचा, रात हो चुकी थी । दहलीज़ से आगे बढ़ा तो सामने ही माँ दीखीं । मुझे देखते ही दहाड़ मारकर चीख पड़ीं कि मैं भूत हूँ । मरकर भूत बन गया हूँ । मुझे साल भर पहले जंगूसिंह ने मार डाला है ।.....उस घर के लिए मैं मर चुका हूँ सरदार ।

[क्रम-परिवर्तन । स्टेज की सारी रोशनी सिमटकर शांतीलाल पर जमी जाती है । काली की मूर्ति के आगे एक पर्दा खिंच आता है जिसमें एक दरवाज़ा और एक खिड़की है । शांति की माँ उसे दरवाज़े से आती दीख पड़ती है ।]

माँ—(शांती को देखते ही, डर से चीख उठती है) नहीं...नहीं...
(आर्त पुकार से) दौड़ो चन्दा के बाबू...दौड़ो...भूत...भूत...
शांती का भूत मुझे लीलने आया है ।

शांती—माँ, मैं हूँ...मैं । मैं शांतीलाल हूँ माँ ।

माँ—भूत...भूत...(डर से पुकारती हुई) चन्दा के बाबू ।...
कहाँ हो ?

शांती—नहीं माँ ।...पहचानो मुझे । मैं शांतीलाल हूँ, आपका शांती-लाल । मैं भूत-प्रेत नहीं । मैं शांतीलाल हूँ...पिता जी कहाँ हैं ?

माँ—(दरवाज़े पर आती हुई, डर से) नहीं नहीं । दूर रहो दूर !...
मुझे छुओ नहीं !

[तेजी से दरवाज़ा बन्द कर लेती है । बन्द दरवाज़े पर शांती सिर टिकाकर रो रहा है । तभी भीतर से आवाज़ आती है ।]

लाला जी—क्या है ?...इस तरह काँप क्यों रही हो ?

माँ—शांती का भूत आया है ! बाहर खड़ा है । (घबराकर) नहीं नहीं ।

दरवाजा मत खोलो । पकड़ लेगा । लील जायगा । कहता है, मैं शांतीलाल हूँ ।

लाला जी—वहम है तुम्हारा ! शांतीलाल को तो डाकुओं ने मार डाला—

जंगू ने उसका गला घोट दिया ! अब तो एक साल पूरा हो गया ।

माँ—उसी की आत्मा प्रेत-योनि में आयी है ।

लाला जी—हत्या जंगू । पहले सोलह हजार, फिर दस, फिर आठ हजार । तेरह दिसम्बर...वही आखिरी तारीख थी ।

(बन्द दरवाजे पर शांतीलाल सिर टकराता है ।)

शांती—पिता जी मैं जिन्दा हूँ । दरवाजा खोलिए ।

माँ—नहीं-नहीं, दरवाजा मत खोलो ? (दरवाजा ज़रा सा खुलता है ।

वह फिर दरवाजा बन्द कर देती है ।) खबरदार, दरवाजे को छुओ तक नहीं ! शांती भूत बनकर आया है ।

लाला जी—ठीक कहती हो तुम ! मेरा शांती तो मर गया । एक वर्ष होने को आया ।

शांती—मैं मरा नहीं हूँ पिता जी ! जंगू ने मुझे छोड़ दिया ।

लाला जी—हाँ बेटे । आत्मा अमर है (खिड़की से झाँकता है) मैं पहचान रहा हूँ, तू मेरे शांती की आत्मा है—भटकती हुई आत्मा !

शांती—यह क्या कह रहे है आप ?

लाला जी—मैं सच कह रहा हूँ । मैं जंगू को दस हजार रुपये न दे सका । आठ हजार भी न दे सका । मैं बीमार हो गया था—और तुम्हारी माँ इतनी रकम कैसे जुटाती । मुझे माफ़ करो शांती की आत्मा ! (रुककर) घबराओ नहीं, दान-पुण्य, पूजा-पाठ से मैं तुम्हें प्रेत-योनि से जरूर मुक्त करूँगा, घबराओ नहीं !

[स्टेज की सारी रोशनी धूमिल पड़ने लगती है । दरवाजे वाला पर्दा पीछे हट जाता है और जंगल का वही दृश्य और काली की मूर्ति दिखायी देती है । साथ ही जंगूसिंह और बलीसिंह की

हँसी फूटती है ।]

जंगू—तो तेरे घर वालों ने तुझे प्रेत समझ लिया । (साश्चर्य) माँ ने नहीं पहचाना ?

शांती—माँ क्या पहचानती ! लेकिन पिता जी ने भी नहीं पहचाना । मैं उन सब के लिए मर गया हूँ । मैं घर से बाहर निकाल दिया गया—प्रेत समझ लिया गया ।

बली—क्यों रे ! यह चन्दा की माँ तेरी असली...

शांती—नहीं, मेरी माँ मर गयी । यह मेरी सौतेली माँ है ।

जंगू-बली—घट् तेरे की । यह पहले क्यों नहीं बताया ?

जंगू—ओहो ! जभी मैं कहता था कि इसके घर वाले कैसे वेदार्द हैं कि बेटे की जान के लिए आठ-दस हजार रुपये भी नहीं दे सकते ।

बली—हमारी जासूसी ही गलत थी, वरना हम लोग तुम्हें जैसे उल्लू के पट्ठे को उठा कर लाते ? छूते तक नहीं ।

जंगू—हमने तभी से यह पेशा छोड़ दिया । जब आदमी की कोई क्रीमत ही न रह गयी, फिर इस पेशे में रहा क्या ? हमें यहाँ अनाथालय नहीं खोलना ।

बली—मुन वे । अब भाग जा यहाँ से । अब हम डाकू हो गये हैं । देख यह बन्दूक । चौबीस जवानों का अपना गिरोह है ।.. जा, भाग जा यहाँ से ।

शांती—कहाँ जाऊँ ? तुम्हीं बताओ, अब मैं कहाँ जाऊँ ?

जंगू—जा किसी कुएँ-नदी में डूब मर ।

शांती—तुम्हीं लोग ले चलो । तुम्हीं मुझे चुरा लाये थे, अब तुम्हीं...

जंगू—(क्रोध से) क्या बकता है । जवान खींच लूँगा ।

शांती—फिर भी यही कहूँगा ।

जंगू—देखा बली सिंह । दया की, गले पड़ गया ।

बली—तेरी खैरियत इसी में है कि तू भाग जा यहाँ से । भागता है कि

नहीं ? (उसे पकड़ लेता है) बोल, भागेगा कि नहीं ?

[शांती उत्तर नहीं देता । आँखें फाड़े उसे एक-टक देखता रहता है । बलीसिंह उसे खींचकर पीटता हुआ नेपथ्य की ओर जाता है ।]

शांती—(पिटते हुए बेपरवाही से) मार डालो मुझे । खूब मारो, मुझे प्रेत बनाने वालो !

जंगू—बस...बस बलीसिंह, बन्द करो पीटना ।

शांती—तुम दोनों प्रेत हो ।

बली—(क्रोध से) फिर बोले तो.....

शांती—जवान खींच लोगे ! मैं तब भी बोलूँगा । सच सच कहूँगा । तुमने मुझे प्रेत बनाया है । देखो मुझे, मैं ऐसे ही था ? ..कौन अब पहचानेगा मुझे ?

जंगू—नहीं रहेगा चुप ! भागेगा नहीं शांती ?

शांती—आंती मर गया । यह उसी का प्रेत खड़ा है ।

जंगू—बलीसिंह ! इस गधे को घसीटकर दूर कर दो यहाँ से । हमारे पास इसके लिए फुर्सत नहीं ।

बली—(शांती पर क्रोध से ऋपटता है, गिरा देता है और उसे घसीटता हुआ) चल । अब तुझे जहन्नुम में छोड़ आऊँ ।

[घसीटता और पीटता नेपथ्य में ले जाता है । नेपथ्य से शांतीखान की एक चीख सुनायी पड़ती है, फिर वहीं से बलीसिंह की आवाज आती है ।]

बली—अब यह बेहोश हो गया !

जंगू—छोड़कर चले आओ । वहीं पड़ा-पड़ा अपने-आप मर जायगा ।

बली—(आते हुए) और अभी इसपर जंगली जानवर लग जायेंगे ।

जंगू—चलो खतम हुआ यह क्रिस्ता । (रुककर) कितनी देर हो गयी । बलीसिंह, सब रुपये बाँध लो ।

बली—(उठाकर) और यह सोना ?

जंगू—इससे बन्दूकें और पिस्तौल खरीदे जायेंगे । (बली के हाथ से सोना ले लेता है ?) कितना उम्दा सोना है ! जी होता है, अपनी कल्ली बेटी के लिए दो-तीन गहने बनवाऊँ ।

बली—ज़रूर । ज़रूर बनवाओ । पहले डाके की दौलत है, निशानी रहेगी ।

जंगू—जब तक कल्ली की माँ ज़िन्दा थी, मैं जेल ही में भटकता रहा । बड़ी दौलत पैदा की, लेकिन मैं उसे एक भी गहनान पहना सका ।

बली—(सेब दौलत को बाँधता हुआ) अच्छा चलो, भाभी नहीं तो उसकी कल्ली बेटी पहनेगी ।

जंगू—अब चलो चलें यहाँ से ।

[सब समान सहेजकर जैसे ही वे चलने को होते हैं, एकाएक शांती प्रवेश करता है ।]

जंगू—तू फिर जी गया ?

बली—इसके मत्थे पर सचमुच मौत नाच रही है । (बन्दूक ठीक करता हुआ) इस गधे पर एक कारतूस ज़ाया करना ही पड़ा ।

शांति—(बन्दूक पकड़ लेता है) जंगूसिंह...सरदार !

(स्वर जैसे टूट-टूट जाता है ।)

जंगू—क्या कहना चाहता है ?

शांती—मैं डाकू बन गया हूँ । तुमने पीटा और मैं बेहोश बन गया ।

मैं सब सीख गया हूँ (फूँकती हुई साँस को दबाकर) मैं भी डाकू हो गया हूँ सरदार । आज से मैं भी डाकू हो गया हूँ ।

जंगू-बली—यह मज़ाक !

जंगू—(क्रोध के आवेश में) इस बार मैं मारूँगा तुम्हें । (बलीसिंह से बन्दूक लेता है) कारतूस लगी है न ? (खोलकर देखता है) चल मर अब ।

(शांती पत्थर की तरह बन्दूक के सामने खड़ा हो जाता है ।)
 शांती—चलाओ गोली ! मैं मर चुका हूँ—दर्द ख़तम हो गया है ।

बली—तुमसे गोली नहीं चलती ? (बन्दूक लेने लगता है) मुझे दो !

जंगू—नहीं बलीसिंह ! शांतिलाल में हिम्मत है ! जो मेरी बन्दूक से न डरा, वह ज़रूर बहादुर है । चलो शांतिलाल, आज से तुम मेरे शागिर्द हुए ।

शांती—शागिर्द नहीं, डाकू ! तुम्हारी टोली का पच्चीसवाँ जवान !

जंगू—शाबाश ! चलो, माँ काला के सामने झुको—आशीर्वाद लो ।

(शांती मूर्ति के सामने झुकता है ।)

जंगू—यह लो बन्दूक । जानते हो चलाना !

शांती—(बन्दूक लेकर) सब जान गया हूँ ।

(फ़ायर करता है ।)

जंगू-बली—शाबाश !...कैसे—कब सीख ली ?

शांती—बस, चल गयी । सब सीख लिया । आज सब आ गया ।

(रुककर) एक डाकू के लिए जो-जो ज़रूरी है, वह सब मुझमें आ गया ! अभी-अभी मिला है ।...मेरी परीक्षा लो सरदार जगूसिंह !

(जवान सूखे ओठों पर फेरता है ।)

जंगू—पास हो गये तुम (बलीसिंह से) बलीसिंह, पानी पिलाओ इसे । बहुत प्यासा है ।

शांती—नहीं नहीं । मेरी प्यास मर गयी सरदार । मुझे पानी नहीं चाहिए ।

जंगू—शाबाश । चलो यहाँ से, आज तुम्हें बहुत उम्दा-उम्दा खाना खिलाऊँगा शांतिलाल !

शांती—सरदार ! आज से मेरा नाम शान्तीलाल नहीं । वह मर गया ।

मेरा नाम अब अशांती है !

जंगू-बली—(हँसकर) अशांती लाल !

शांती—लाल भी नहीं !...शांतिलाल, यह नाम मेरी बुआ ने रखा था । वह चली गयी...मैं चला गया । मेरी माँ भी नहीं रही । अब इस भूत का नाम अशांती है—केवल अशांती ।

(दोनों डाकू हँसते हैं ।)

जंगू—बलीसिंह । देख लेना, यह हमारे गिरोह का सबसे बहादुर जवान होगा ।

शांती—कल ही कहीं डाका डालकर मेरा इम्तहान लो सरदार !

जंगू—घबराओ नहीं । अभी चार-छः दिन खूब आराम कर लो ! तुम्हारे लिए कपड़े बनेंगे । तुम्हें अपने वेटे की तरह रखूँगा ।

शांती—नही सरदार, मैं जो हूँ, वही रहूँगा । मुझे बस हथियार चाहिए । नयी बन्दूक, नयी पिस्तौल !

जंगू—सब मिलेगा—जो-जो तुम चाहोगे, मिलेगा ।

शांती—सरदार, मैं कल ही डाका डालना चाहता हूँ ।

बली-जंगू—लेकिन कहाँ ? किस पर ?

शांती—लाला शंकरदयाल के घर ! उस घर, जहाँ वेटे के लिए दरवाजा बन्द हो गया । जिसने अपने वेटे को पराया समझा । पराया बना दिया । (आवेश में) सरदार । उस दौलत भरे घर को अगर मैं अकेला लूटकर न दिखा दूँ तो मेरे नाम पर थूक देना । मुझे मेरी बुआ की क्रसम ! मेरी माँ की क्रसम !

जंगू—अच्छी बात है ।

बली—हम आज ही से तैयारी करेंगे । अपने जवानों को इकट्ठा कर ले ।

शांती—मैं तो कहता हूँ, मैं उस घर के लिए अकेला काफी हूँ । मुझे सब पता है, मेरे घर की दौलत कहाँ-कहाँ रखी है । मैं अकेला लूटकर दिखाऊँगा !

(दोनों चुप हैं)

शांती—(कटु आवेश में) दस हजार से भी ज्यादा के गहने तो मेरी माँ छोड़कर मरी थी । (रुककर) उस घर से मेरी क्रीमत आठ हजार भी न आँकी गयी ।

जंगू—वह सब भूल जाओ !

शांती—नहीं सरदार । जो मुझ पर बीता है, वह क्या भूलेगा ? मैं उतना ही हूँ जो बीत गया हूँ ।

बली—अच्छा बाबा, चुप रह । उठा यह सामान, अब हम लोग यहाँ से चलेंगे !

जंगू—अभी चलोगे ? हमने सूरज डूबने का समय दिया था अपने जवानों को, वे सब आ ही रहे होंगे ।

बली—सूरज तो डूब गया ।

जंगू—बस आ ही रहे होंगे । उनके हिस्से बाँट देंगे और लाला शंकर-दयाल पर डाका डालने की सारी स्कीम बना लेंगे ।

शांती—सरदार ! मानो मेरी । सारी स्कीम मेरे दिमाग में है । रह-रह-कर बिजली की तरह कौंध रही है ।

[पृष्ठभूमि में कुछ लोगों के आने तथा बोलने-चालने की आहट होती है]

बली—(नेपथ्य में देखकर) वे लोग आ रहे हैं ।

जंगू—सब आ गये हैं ?

बली—हाँ सभी दिखायी देते हैं ।

जंगू—अशांती ! लो मेरी गोल के जवानों से मिलो ।

[शांती अपनी बन्दूक को तानकर कुछ देखता रह जाता है । डाकुओं की आबाज़ मंच के पास पहुँच जाती है । 'जै काली की' के स्वर उठते हैं । तभी मंच पर प्रकाश धूमिल हो जाता है । बन्द दरवाज़े वाला एक और पर्दा विंग से आकर जंगल और काली की

मूर्ति को ढँक लेता है। जब रोशनी होती है तो बलीसिंह के घर का बरामदा दिखायी देता है। दायें-बायें एक-एक चारपाई पड़ी है। रात का तीसरा पहर है।

जंगू के साथ शांती आता है। कन्धे पर बन्दूक लटक रही है। साफ़ अच्छे कपड़े पहने है। पहले के शांती की अपेक्षा बिलकुल नया आदमी हो गया है। बन्द किवाड़ों पर जंगू दस्तक देता है।]
शांती—यहाँ कहाँ आ गये ? तुम्हारा गाँव तो गोलागज में था।
जंगू—यह बलीसिंह का घर है। मैंने गोलागंज छोड़ दिया। जब से यह पेशा इस्त्रियार किया है, तब से मैं कहीं एक जगह नहीं रहता।

[फिर बन्द दरवाज़े पर दस्तक देता है, इस बार भीतर से कल्ली की आवाज़ आती है।]

कल्ली—आयी काका...चिराग जला रही हूँ।

शांती—सरदार। यह तो जैसे कल्ली की आवाज़ है।

जंगू—ओ हो ! आवाज़ से तू कल्ली को पहचान गया ?

शांती—मैं तो बहुत दिन उसके संग रहा हूँ—जब तुम मुझे चुराकर लाये थे...

जंगू—(बीच ही में) खोलती है रे ?

कल्ली—आ गयी बाबू।

(दायें हाथ में चिराग लिये कल्ली बन्द दरवाज़ा खोलती है।)

कल्ली—(आश्चर्य से) अरे ! यह कौन है बाबू ?

जंगू—पहचाना नहीं ? अरे ! वही शांतीलाल तो है। ज़रा कपड़े-लत्ते नये पहने हैं।

कल्ली—अरे ! यह फिर कैसे आ गया ? घर नहीं गया क्या ?

[जंगू भीतर चला जाता है। शांती दरवाज़े से ज़रा चुपचाप खड़ा है।]

कल्ली—जब घर से लौट आये, तब यहाँ क्या खड़े हो ? चलो भीतर आओ न ।

[शांती चुपचाप लौटकर दायीं ओर की चारपाई पर सिर थामकर बैठ जाता है । कल्ली दहलीज़ में निःस्पन्द खड़ी रह जाती है । कुछ क्षण बाद भीतर से जंगू लौटता है ।]

जंगू—बली की बहू तो घोड़े बेचकर सोयी है ।

कल्ली—बली काका आज शाम को आये थे, फिर न जाने कहाँ चले गये, कुछ बताया नहीं !

जंगू—तुम्हें क्या बताता, काम से गया है !...क्यों अशांती, कुछ खाओ-पीओगे नहीं ?

शांती—(जैसे जगकर) क्या ? ओह !...पानी पिऊँगा ।

जंगू - ला, बड़ा लोटा भर पानी पिला तो ! आज दो दिन हो गये इसे मेरे साथ । लेकिन पानी के अलावा इसने कुछ नहीं लिया ।

(कल्ली भीतर जाती है ।)

जंगू—क्यों ? अगर तुम इस तरह भूखे रहे तो कल का डाका कैसे होगा ।

(कल्ली आती है । उसके हाथ से लोटा भर पानी घूँट जाता है ।)

शांती—(लम्बी साँस छोड़कर) सरदार ! वह काम भूख ही से होगा !

(खड़ा होकर) भूख में इतनी ताकत है कि बन्दूक में क्या होगी !

(कटुता से)—गला घोंट दूँगा लाला शंकरदयाल का ! उलट दूँगा तिजोरियाँ । मेरी ताकत भूख है ।

(सहसा घर से आवाज़ आती है—)

आवाज़—कल्ली...ओ कल्ली !

जंगू—जग गयी बली की बहू ।

[भीतर चला जाता है । चिरागा लिये कल्ली शांतीखान के पास आती है ।]

शांती—क्या देख रही हो ?...अब मैं डाकू हो गया हूँ । मैं अब वह शांतिलाल नहीं, जिसे तुम्हारे बाबू ने चुराकर दस हजार के लिए गुम कर लिया था । तब मैं चोरी का सामान था, अब मैं खुद डाकू हूँ !

कल्ली—डाकू हो गये तुम ?...

शांती—हूँ...लेकिन इस तरह ताज्जुब क्यों ?

कल्ली—सच, तुम डाकू हो गये ?

शांती—हाँ, हाँ । तेरे बाबू की गोल का पन्चीसवाँ जवान ।...कल मेरा पहला डाका होगा !

कल्ली—चुप रहो जी !

(शांती केवल हँसता है ।)

कल्ली—मैं कहती हूँ चुप रहो । लगता है तुम्हारा भेजा उलट गया है ।

शांती—सब कुछ उलट गया है कल्ली ।

कल्ली—तुम ज़रा सो लो ! अब सुबह बात करूँगी तुमसे ।

शांती—सोओ तुम ! मैं क्यों सोऊँ !

कल्ली—देखो, तुम कुछ बोलो नहीं ! जो पूछती हूँ, उसका उत्तर दो... यहाँ सोओगे या...

शांती—(बीच ही में) तुम जाओ यहाँ से । मैं यहीं बैठा रहूँगा ! मैं कहता हूँ, मुझे यों न दखो । कुछ नहीं समझोगी !...समझना हो तो जाओ अपने बाबू से समझो या बलीसिंह आयेगा तो उससे समझना ।

[सहसा भीतर से जंगू की पुकार आती है—“कल्ली ! यहाँ चल ।”]

(कल्ली जाती है ।)

शांती—हाथ के कंगन...गले का चन्द्रहार...माथे की बेंदी...और कान के बाली-बुन्दे ।

(खुबकर हँसता है । इसी बीच कल्ली भीतर से दौड़ी आती है ।)

कल्ली — मैं नहीं पहनूँगी ये गहने... नहीं पहनूँगी ।

शांती — अच्छा !.. लेकिन गहने तो नये हैं ।

कल्ली — डाके के तो हैं ।

शांती — ओ-हो ! बड़े दिमाग हैं ।...लेकिन खाती किसका हो ?

कल्ली — (चुप है)

शांती — बेटी किसकी हो ? तुम्हारे शरीर में खून किसका है ?

कल्ली — मेरी माँ का !

शांती — माँ का ! (हँसता है) अच्छा तमाशा है ।

(जंगू का प्रवेश)

जंगू — मानेगी नहीं कल्ली ! मार खायेगी क्या ?

कल्ली — (उफन पड़ती है) और क्या है तुम्हारे पास ! डाका और मार ।

जंगू — चढ़ गया दिमाग !

[पकड़ लेता है और भीतर खींच ले जाता है । कुछ क्षण

बाद कल्ली आँसू पोंछती आती है ।]

शांती — मैं तो समझता था कि तुम्हारा बाबू अब तुम्हें न मारता होगा ।

कल्ली — जो मर गया वह मारने के सिवा और क्या करेगा ।

शांती — मैंने सुना था कि चोर और डाकू में अंतर होता है, लेकिन

कल्ली, तेरा बाबू तो चोर से ही डाकू हुआ है (रुककर) और

यह बलीसिंह भी चोर ही रहा होगा...क्यों था न ?

कल्ली — चुप रहो, ज़रा भी नहीं डरते ।

शांती — अब क्यों डरूँ ।

कल्ली — तभी आदमी से डाकू बन गये !

शांती — (चुप है)

कल्ली — इसके मानी तम भी चोर थे ।

शांती—क्यों नहीं । इतने दिन चोर के घर का अन्न जो खाया है ।

कल्ली—वे मेरे हाथ की रोटियाँ थीं ।

शांती—तुम्हारे हाथ की ? तुम्हारा भी कुछ अलग है ।

कल्ली—है । जो मैं सोचती हूँ वही मेरा है । जो मैं भीतर हूँ...

शांती—(बीच ही में) लेकिन मेरे भीतर कुछ नहीं है । मैं जो हूँ केवल बाहर हूँ ।

कल्ली—भूठ । मैंने तुम्हें आदमी देखा था ।

शांती—वह मर गया । तुम्हें तो ख़ुश होना चाहिए ।

कल्ली—मैं जंगूसिंह की बेटी हूँ इसलिए न (रो पड़ती है) मेरे बाबू ने इसीलिए तुम्हें मार डालने से छोड़ दिया था कि तुम डाकू बनो । जंगूसिंह ने कभी किसी लड़के को नहीं छोड़ा ।

शांती—(पीढ़ा से) चुप रहो कल्ली । मेरी नसों में ज़हर मत घोलो, नहीं तो मैं तुम्हारे बाबू को बता दूँगा कि तुम...

कल्ली—जानता है मेरा बाबू । वह मुझे ख़ूब जानता है । तभी वह मुझसे यूँ पेश आता है ।

शांती—जंगूसिंह ने मुझे ज़िन्दा छोड़कर मार दिया कल्ली । मुझे प्रेत सिद्ध कर दिया...मौत से भी भयानक ! (एकाएक कटु हो जाता है) कल्ली तुम यहाँ से भाग जाओ । हट जाओ मेरे सामने से । मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

(भीतर से बन्दूक लिये)

कल्ली—(शांती से) कुछ खा लो तुम ।

शांती—मुझे अभी जाना है ।

जंगू—कल्ली हम जा रहे हैं । परसों-रात इसी समय लौटेंगे—इन्तज़ार करना । जा भीतर । किवाड़ बन्द कर ले । चल अशांती ।

[जंगू बायीं ओर मुड़ता है । कल्ली देहरी पर वैसे ही चिरागा लिये खड़ी शून्य में तक रही है ।]

कल्ली—जाओ। मैं अपने ईश्वर से मनाऊँगी कि तुम सब मर जाओ। शांती तुम जरूर मारे जाओ। (रो पड़ती है।) सब मारे जाओ ! मैं संसार में भीख माँग लूँगी पर चोरी-डाके की रोटी न खाऊँगी।

[शांती धीरे-धीरे दायीं ओर मुड़ता है। तभी कल्ली का चिराग़ एकाएक बुझ जाता है और उसी पर कल्ली झटके से किवाड़ बन्द कर लेती है। कुछ क्षणों तक रंगमंच बिलकुल अँधेरा रह जाता है। फिर जब धीरे-धीरे प्रकाश लौटता है, वही जंगल का दृश्य काली की मूर्ति के साथ सामने आ जाता है। नीचे ज़मीन पर जंगू और बलीसिंह डाके की दौलत के सामने बैठे हैं। दोनों के हाथों में शराब की बोतलें हैं। मस्ती में झूम रहे हैं, हँस रहे हैं।]

जंगू—शाबाश शांतीलाल ! आओ इनाम लो अपना। हम वेहद खुश हैं तुमसे। जो कुछ माँगना हो माँग लो।

[शांतीलाल एकदम त्रस्त और उखड़ा-उखड़ा-सा आका चुपचाप खड़ा हो जाता है। उसके दोनों हाथ ज़ख्मी हैं।]

बली—पहले ही डाके में तुम्हारी यह बहादुरी ! आओ... इस खुश में मैं तुम्हें अपने हाथ से शराब पिलाऊँगा !

जंगू—शांती, तुम चुप क्यों हो बेटे। क्या बात है ? आओ, मेरे पा आ भी जाओ !

बली—बहादुर नौजवान ! जो पूरे ढाई घंटे के डाके में बिजलीन दौड़ता रहा, जिसने पहुँचते ही उस घर के सारे बन्द किवाड़ तो डाले...

शांती—(एकाएक तड़प उठता है) चुप रहो !

जंगू—बेटे, तुम्हें मैं अपना सिपहसालार बना रहा हूँ। मेरे पास : जाओ। तुम्हारे दोनों हाथों में चोट लगी है। आओ, मैं उस शराब लगा दूँ।

शांती—सरदार !...

जंगू—हाँ हाँ, बोलो !

शांती—नहीं । कुछ नहीं ।

जंगू—नहीं, माँगो । माँगो, जो माँगना चाहने हो, उधर शून्य में क्या देख रहे हो ?

शांती—रामनगर के उस बन्द घर को देख रहा हूँ—उन सादे बन्द किवाड़ों को, जिन्हें तुमने मेरे हाथों से तुड़वाया ।

जंगू—तुम चाहते जो थे । आओ । मेरे पास आ जाओ । तुम बेहद थक गये हो ।

शांती—(उसी तरह शून्य में देखता हुआ) सरदार ! तुमने मेरे पिता को बड़ी बेरहमी से उस खम्भे के साथ बाँध दिया, मुझे इसकी शिकायत नहीं, लेकिन तुमने उनके मुँह पर थूका क्यों ?

बली—(शराब के नशे में बेतुका ठहाका लगाते हुए) उस साले कंजूस के लिए अब इसे दर्द हो रहा है ।

शांती—(जंगूसिंह की बात को सुनी-अनसुनी कर वही शून्य में देखते हुए) तुमने मेरी माँ को गंदी गालियाँ क्यों दीं ?

जंगू—(नशे में थथलाते हुए) वह माँ नहीं डायन है...हम तुम्हारी तरह बात नहीं करते, काम करते हैं ।

(बोतल को मुँह से लगा लेता है ।)

शांती—(वहीं शून्य में देखता और दाँत पीसता हुआ ओठों में) बेरहम, हत्यारे कहीं के !

बली—(बेहद नशे में) अरे नाराज क्यों हो रहे हो बेटे ?

जंगू—(पूर्ववत् थथलाते हुए) बेटा नाराज हो रहा है बलीसिंह । (शांती से) यह नाराज होने का वक्त नहीं, खुश होने का वक्त है । आओ नाराजगी छोड़ो । अपनी बहादुरी का इनाम लो ।

शांती—(उसी स्वर में) तुम सेठ शंकरदयाल पर डाका डालने गये

ये, पर तुमने चार खून क्यों किये ? दौलत के साथ जानें क्यों लीं ?

जंगू—(ठहाका मारकर) हम डाकू हैं, चोर नहीं, जो खून करने से भिन्नकें । फिर खून तो तीन हुए । क्यों बलीसिंह ?

(बलीसिंह धुत्त लेटा है । जवाब नहीं देता ।)

जंगू—(उसे पाँव से ठहोका देकर) धुत्त हो गये ! और कहता था मैं पूरी बोतल पी सकता हूँ । साला भुट्टा !

शांती—चौथा खून उस कुत्ते का हुआ जो पहुँचते ही भूँक कर दौड़ा था ।

बली—(सहसा उठकर शराबी ठहाका लगाता है) कुत्ते का खून ! हा...हा...हा ।

[जंगूसिंह उसे बाहों से पकड़ लेता है और दोनों मिलकर 'कुत्ते का खून' हा...हा...हा करते हुए ठहाके पर ठहाका लगाते हैं और धुत्त हो जाते हैं ।]

शांती—(अजीब पीड़ा और कटुता से) उस कुत्ते को मैंने पाला था । उसका नाम मोती था । ज़रा-सा पिल्ला था, जब मैं उसे लाया था । क्यों मारा उस निर्दोष कुत्ते को ? (क्रोध से उन धुत्त पड़े डाकुओं को देखता है) जवाब दो, नहीं तुम भी कुत्ते की मौत मारे जाओगे ।

बली—(गहरे नशे में) कुत्ते, हम सचमुच तुम्हारे कुत्ते हैं...तुम आज से मालिक हो, बादशाह हो ।

जंगू—तुम सरदार बनने योग्य हो । आओ सरदार ! आओ बादशाह ! हमें आज अपने हाथ से पिलाओ, हमें इनाम दो । हमने तुम्हारे बाप को उसकी कंजूसी का मज़ा चखाया । तुम हमें इनाम दो । यह दौलत तुम्हीं बाँटो ।

शांती—मैं बाटूँ ? अपने पिता की वह दौलत तुम हत्यारों में बाटूँ जो

उसने कौड़ी-कौड़ी कर जोड़ी। जो उसके सारे जन्म की कमाई थी।.....यह सब मैं करूँ जो उसका बेटा हूँ, जिसे उसने जन्म दिया है। जंगूसिंह ! हत्यारे ! यह सब तेरे कारण हुआ। न तू मुझे चुराकर लाता, न मैं अपना ही घर लूटने वाला बनता। तुम्हीं ने बेटे को बाप के घर में पराया बना दिया। डाकू बना दिया। (सहसा पलटकर जंगू से) तुमने उसका बेटा छीना, दौलत छीनी और उस गरीब की आबरू मिट्टी में मिला दी !...क्यों ? जवाब दो जंगूसिंह (उसको उठाकर झकझोरता है) जवाब दो ! नहीं देते !...

[जंगूसिंह शराब के नशे में बड़बड़ाता है। शांती को मारने के लिए हाथ उठाता है, पर शांती के एक ही धक्के से नेपथ्य में लड़खड़ाता जा गिरता है।]

शांती बलीसिंह की ओर मुड़ता है और उसे उठाकर झकझोरता है।]

शांती—और तुमने बलीसिंह, उस कुत्ते को क्यों मारा ? क्यों मारा ? जवाब दो ।...

[बलीसिंह बड़बड़ाता है, पर शांती के दो धक्के से जंगूसिंह के बराबर जा गिरता है।]

शांती परे हटकर निशाना साधता है :]

शांती—तुमने मेरे प्यारे कुत्ते को मारा बलीसिंह, मैं तुम्हें कुत्ते की मौत मारता हूँ। (बन्दूक दाग देता है) और तुमने जंगूसिंह, मेरे बाप के मुँह पर थूका, मैं तुम्हारे नाम पर थूकता हूँ। (बन्दूक दाग देता है। फिर उठकर उन्मादियों-सा बन्दूक फेंकता है) मर गये दोनों ! अपने दंड को प्राप्त हुए। लेकिन मैं...मैं...मेरा दंड क्या है ? मुझे कौन दंड देगा ? मुझे...कौन दंड देगा ? (बढ़कर बन्दूक

उठा लेता है) दंड तो मुझे भी मिलना चाहिए ।...मुझे भी मिलना चाहिए ।

[सहसा प्रकाश मंद होकर बुझ जाता है । क्षण भर बाद जब प्रकाश लौटता है तो बलीसिंह के बरामदे का वही बन्द दरवाजा सामने है । दार्याँ ओर से लड़खड़ाता हुआ शांती आता है और उसी बन्द दरवाजे से सिर टकराकर खड़ा हो जाता है । शरीर पर कहीं-कहीं ताजे खून के धब्बे हैं, और बन्दूक सम्हाले से भी नहीं सम्हाल रही है ।]

शांती—(टूटते स्वर में) कल्ली, दरवाजा खोलो । ओ कल्ली !

कल्ली—(भीतर से) आयी । चिराग जला रही हूँ ।

शांती—नहीं । चिराग न लाओ । मैं कोई बाहर का आदमी नहीं हूँ ।

[दरवाजा खुलता है, कल्ली जैसे ही चिराग लिये दीख पड़ती है, शांती चिराग को मुँह से बुझा देता है । वह फिर जलाती है, वह फिर बुझा देता है ।]

कल्ली—(झुंझलाकर) यह क्यों ? चिराग क्यों बुझा देते हो ? बिना रोशनी के तुम भीतर नहीं जा सकते ।

शांती—मैं भीतर नहीं जाऊँगा (कल्ली को दरवाजे से बाहर खींच लेता है) आओ चलें । यह लो मेरी बन्दूक । चलो कहीं फेंक आर्ये इसे ।

कल्ली—(डरकर) हाय ! यह बन्दूक खून से डूबी है । तुम्हारे हाथ भी घायल हैं ।

शांती—फेंक दो इसे ।

(स्वयं फेंकता है ।)

कल्ली—(निकट आकर) यह क्या ? तुम्हें तो गोली लग गयी है । अच्छा हुआ । मैं यही चाहती थी । वे दोनों मर गये न ?

(शांती अपने को थामकर बैठ जाता है ।)

कल्ली—(पीड़ा से) तुम्हें मेरे बाबू ने तो नहीं मारा ? (रुककर) बलीसिंह ने गोली चलायी होगी तुम पर । (बढ़कर बन्दूक को उठा लेती है) बोलो, कहाँ हैं वे ? बताओ मुझे ।

शांती—(आधा लोट गया है) बता दूँ ।.....मैंने दोनों का खून कर दिया ।

कल्ली—मेरे बाबू को मार दिया । हत्यारे, जिसने तुम्हें इतने दिन प्यार से खिलाया । मारने के बदले तुम्हें छोड़ दिया, उसे मार दिया तुमने, तुम...

(बन्दूक साधने लगती है ।)

शांती—बन्दूक में एक कारतूस है । चलाओ गोली । (कराहकर लोट जाता है) चलाओ, जल्दी । (उठता हुआ) चलाओ, मैं आत्महत्या के पाप से बच जाऊँगा ।

(कल्ली रो पड़ती है और शांती को सम्हालने दौड़ती है)

शांती—मुझे पता था, तभी मैंने खुद ही बदला ले लिया (रुककर) कल्ली, अब मैं अपने घर जाना चाहता हूँ । मुझे ले चल । तू मेरी बुआ है न ? (बेहोश होने लगता है) तब मैं अकेले घर गया था, आज मैं तेरे संग चलूँगा । उठा मुझे । देख आज मेरे घर का दरवाजा बन्द नहीं । देख वह खुल रहा है । मेरे लिए खुल रहा है । (धीरे-धीरे प्रकाश बुझने लगता है और उसी पर पर्दा गिरता है ।)

घपले

•

उपेन्द्रनाथ अशक

पात्र

त्रिपाठी

पाल

मिश्र

बिमला

प्राण

सुरेन्द्र

सुधीर

लाल

इंजीनियर

अव्वास

[पर्दा आल इण्डिया रेडियो इलाहाबाद के स्टूडियो नम्बर ३ में खुलता है। बायीं ओर पैनिल है, जिसके ऊपर दो टर्न-टेबल पिक-अप, फेडर, ईयर-फोन्ज़ इत्यादि यथा स्थान लगे हैं। एक छोटा सा माइक वहीं पैनिल पर बायें फेडर के पास रखा है।

स्टूडियो के मध्य एक बड़ा माइक रखा है। सामने की दीवार के साथ नीचे कुछ वाद्य-यन्त्र करीने से धरे हैं और पास ही एक छोटा माइक स्विच से अलग बेकार पड़ा है। एक कोने में स्टूल पर ट्रे है, जिसमें पानी के गिलास रखे हैं।

दायीं दीवार के मध्य लगे शीशे में से कंट्रोल रूम की झलक मिलती है। शीशे के ऊपर गोल फ्लिक लगी है। उसमें जब लाल रोशनी आती है तो स्टूडियो में होने वाला कार्य-व्यापार प्रसारित होने लगता है।

पर्दा उठते समय बत्ती में लाल रोशनी है। स्टूडियो क्रियाशील है। ड्यूटी अक्रसर त्रिपाठी पैनिल पर बैठा एनाउंसमेंट कर रहा है। प्रोग्राम असिस्टेंट योगेन्द्र पाल पास खड़ा है]

त्रिपाठी—(माइक में) यह ऑल इंडिया रेडियो इलाहाबाद है। माफ कीजिए, यह ऑल इंडिया रेडियो इलाहाबाद है। Oh I am sorry, यह ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद है। अभी आप अंग्रेजी में समाचार सुन रहे थे, अब रात के सवा नौ बजे हैं, हम आपको मिले-जुले गानों के रेकार्ड सुनायेंगे। (फेडर ऑफ़ करके) बार मैं बड़ा ग़लत बोल रहा हूँ।

पाल—तुमने फेडर ऑफ़ कर दिया है न ?

त्रिपाठी—हाँ हाँ !

पाल—तुम्हारी आवाज़ बेहद भोड़ी है।

त्रिपाठी—वह एनाउंसर कमबख्त न जाने कहाँ भाँग खाकर सो गया। मैं ड्यूटी अफसर हूँ, एनाउंसर नहीं। यह कल की एनाउंसमेंट्स भगवान के लिये तुम पढ़ दो !

(उठता है। पाल उसकी जगह पैनील पर बैठता है।)

पाल—(त्रिपाठी से कागज़ लेकर माइक में) हम ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद से बोल रहे हैं.....

त्रिपाठी—(फेडर ऑन करके) अरे तुमने फेडर तो ऑन ही नहीं किया। (जल्दी से फिर फेडर बन्द करता है।) अरे यार यह तो ब्रॉडकास्ट हो गया !

पाल—अब तुम चुप रहो, मैं फेडर ऑन करके एनाउंसमेंट्स पढ़ता हूँ। (मुँह पर उँगली रखकर 'शी—ी—ी' करता है कि कहीं बोल न पड़ना, फिर फेडर ऑन करता है।) यह ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद है। अभी कुछ क्षण बाद आपकी सेवा में मिले-जुले गानों के रेकार्ड पेश किये जायँगे। [इससे पहले कुछ आवश्यक सूचनाएँ सुनिए ! कल संगीत के कार्यक्रम में शहनाई-नवाज़ विसमिल्लाह खाँ एण्ड पार्टी, हीराबाई बड़ोदेकर और बाँसुरी-विशेषज्ञ पन्नालाल भाग ले रहे हैं।

(फ्रेडर ऑफ करके खाँसता है ।)

पाल—यार मुझे पानी का एक घूँट चाहिए ।

त्रिपाठी—पानी लाने में देर हो जायगी । अब पढ़ डालो । हालाँकि
आवाज़ तुम्हारी भी भैंस को शरमा रही है ।

पाल—तुम कौन से तानसेन हो । मेढ़ा तुम्हें सुन लेता तो जौहड़ में
मुँह छिपा लेता !

त्रिपाठी—जौहड़ में भैंस ही मुँह छिपाती है श्रीमान पाल साहब !

(पाल आग्नेय दृष्टि से त्रिपाठी की ओर देखता है और पढ़ता है ।)

पाल—कल स्वर-वेला में तरुण कवि 'अतुकान्त' अपनी कविताएँ
व्याख्या-सहित प्रस्तुत करेंगे (पीछे मुँह ढरके रुमाज में खाँसता
है ।) बहनों के प्रोग्राम में प्रसिद्ध पर्यटक श्रीमती उमा...अ...
अ...कम्बख़त यह क्या लिखा है...I am sorry...अ...अ...!

त्रिपाठी—(धीरे से) अविनाश चन्द्र ।

पाल—अविनाश चन्द्र कश्मीर सम्बन्धी अपने मनोरंजक संस्मरण
सुनायेंगी । अभी मिले-जुले गानों के बाद श्री कैलाश चवल...

त्रिपाठी—(धीरे से) कँवल.....।

'मन' कैलाश कँवल का हास्य-रस से भरपूर नाटक 'घपले' ब्रॉडकास्ट
होगा । आवश्यक सूचनाएँ समाप्त हुईं । अब आप मिले-जुले गानों
के रेकार्ड सुनिए ।

[माइक का फ्रेडर बन्द करके दायें हाथ के टर्न-टेबल पर रखा
रेकार्ड फ़िलर के रूप में चला देता है और दोनों हाथों से सिर के
बाल नोचता हुआ लम्बी साँस लेता है ।]

—इस एनाउंसर मिश्रा ने तो समय पर न आकर प्रोग्राम का बटाढार
कर दिया । लिखे मूसा, पढ़े खुदा । इन लोगों का लिखा, यही
पढ़ें । यह हिन्दी है या मोहंजोदड़ो के समय की लिपि । दस गलतियाँ
हो गयीं ।

(एनाउंसर देवेन्द्र मिश्र हाँफता हुआ प्रवेश करता है ।)

पाल—लीजिए तशरीफ़ ले आये हैं श्रीमान, जब आवश्यक सूचनाओं का सत्यानास हो गया ।

मिश्र—(चबराहट और परेशानी में हाथ मलते हुए) माफ़ कीजिएगा...

त्रिपाठी—हम कौन होते हैं माफ़ करने वाले । माफ़ तो ए० एस० डी० साहब करेंगे । समय पर आपके न आने से सत्रारों के बाद का प्रोग्राम भैसे और मेढे की आवाज़ से शुरू हुआ...

मिश्र—भैसे की आवाज़ से ?

त्रिपाठी—तुम वक्त पर आये नहीं, नौ बजे की एनाउंसमेंट करके कल्याणी चली गयी, सुबह से आयी हुई थी । तब एनाउंसमेंट मुझे करनी पड़ी । पाल का खयाल है, मेरी आवाज़ मेढे को मात करती है । आवश्यक सूचनाएँ इसने प्रसारित की और मैं समझता हूँ, इसने भैसे के कान काट दिये ।

(मिश्र दौत निपोरता है ।)

पाल—और फिर आप लोगों का लिखा आप ही पढ़ सकते हैं, कल्याणी यह एनाउंसमेंट लिख गयी है । एक ही वाक्य में दस गलतियाँ हो गयीं ।

[फ़िज़र ख़त्म हो जाता है और पिक-अप की सुई निकलकर भटक जाती है और अत्यन्त भौंड़ी आवाज़ आती है । पाल झट से पिक-अप उठाता है और बायीं ओर के टर्न टेबल पर पड़ा रेकार्ड लगा देता है ।]

—(फ़ेडर ऑन करके माइक में) यह ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद है । अब आप अख़्तराबादी फैज़ाबाई का रेकार्ड सुनिए । बोल हैं—

रस के भरे तोरे नैन

[रेकार्ड का फ़ेडर ऑफ़ करता है । की (Key) दबाता है, चण

भर अख्तरबाई फैजाबादी की आवाज़ स्टूडियो में गूँजती है, फिर की (Key) ऑफ़ कर देता है, ऐसे कि बात-चीत की बैकग्राउंड में रेकार्ड की आवाज़ धीरे-धीरे स्टेज पर आती रहती है।]

त्रिपाठी—यह क्या बक गये तुम ? अख्तरबाई फैजाबादी या अख्तराबादी फैजाबाई.....

पाल—मैं नया-नया आया हूँ। मैंने कभी एनाउंसमेंट वगैरह नहीं की। बिना लिखे बोलने की मुझे प्रेक्टिस नहीं। मैं जाता हूँ, मुझे अभी आर्टिस्टों को इकट्ठा करना है।

(उठकर चला जाता है।)

मिश्र—(आगे बढ़ते हुए) आप उठिए, मैं बैठता हूँ पैनिल पर !

त्रिपाठी—(उसका रास्ता रोककर) आप घर जाइए। अब जाकर आप तशरीफ़ लाये हैं। मैं रिपोर्ट कर दूँगा। ज़िम्मेदारी तो सारी मेरे सिर है।

मिश्र—अरे भाई, मैं चला तो ठीक समय पर था लेकिन...

त्रिपाठी—स्टेशन आते-आते समुराल चले गये।

मिश्र—नहीं भाई रास्ते में...

त्रिपाठी—गप लगाने लगे...

मिश्र—साइकिल बस्ट हो गयी।

त्रिपाठी—ये बहाने किसी और को बताइए। तीन-चार रेकार्ड हैं, सो मैं देख लूँगा। आप जाइए, अपनी साइकिल ठीक कराइए।

मिश्र—त्रिपाठी भाई, यह जुल्म न करो। राम बाग़ से फटी हुई ट्यूब के साथ साइकिल भगाये हुए ला रहा हूँ। टायर के परखचे उड़ गये, ट्यूब तार-तार हो गयी।

त्रिपाठी—मिस्त्री क्या रास्ते में सभी मर गये थे ?

मिश्र—इतनी रात गये वहाँ मिस्त्री कौन बैठा है ? फिर आज तो हड़ताल थी।

त्रिपाठी—तांगे-रिक्शे पर आ जाते ।

मिश्र—तांगे उधर कहाँ चलते हैं । इक्के हैं सो दारागंज से भरे आते हैं । फिर साइकिल के साथ इक्के पर सवार भी तो नहीं हुआ जा सकता ।

त्रिपाठी--रिक्शा ले लेते ।

मिश्र--एक रिक्शा लिया था । उसने समझा कि सवारी कोई दूसरी बैठेगी । जब मैं ही साइकिल लेकर बैठने लगा तो उसने चलने से इन्कार कर दिया । अजब बद-दिमाग आदमी था ! शायद किसी ज़माने में मिलेट्री में रहा होगा । बोला, 'उतर जाइए साहब ! साइकिल के साथ मैं आपको नहीं बैठा सकता ।' मैंने पूछा, 'आखिर क्यों ?' बोला, 'दो सवारी के पैसे साइकिल के लगेंगे ।' मुझे यों ही देर हो रही थी । ब्रह्म में आध घंटा लग जाता । मैंने साइकिल उतारी और गुस्से के मारे फटी ट्यूब के साथ ही भगाये चला आया ! नयी ट्यूब बदलनी पड़ेगी और सात-आठ रुपये की डज़ पड़ जायगी ।

(पैनिल की ओर बढ़ता है ।)

त्रिपाठी—मैं नहीं इजाज़त दे सकता आपको एनाउंसमेंट करने की ।

मिश्र—अरे त्रिपाठी भाई सच कह रहा हूँ, अगर मैं झूठा निकला तो तुम रिपोर्ट कर देना । रिपोर्ट तो तुम बाद में भी कर सकते हो । इंसान हूँ, देवता नहीं हूँ और इंसान ही हादिसों का शिकार होते हैं ।

[ड्यूटी अफसर ढीला पड़ जाता है । मिश्र बढ़कर पैनिल पर बैठता है । ड्यूटी अफसर बाहर जाता है ।]

मिश्र—दूसरा रेकार्ड कौन-सा है ?

त्रिपाठी—सहगल का—आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक !

[मिश्र फ़ेडर ऑन करता है । अख़्तरबाई फ़ैज़ाबादी के गाने

के बोल सुनायी देते हैं। मिश्र इस बीच में जल्दी से दायें टर्न-टेबल में फ़िलर का रेकार्ड हटाकर दूसरा रेकार्ड लगा देता है। बायें टर्न-टेबल पर रेकार्ड खत्म हो जाता है। मिश्र पिक-अप उठाता है। माइक का फेडर ऑन करके एनाउंसमेंट करता है।]

—अभी आप अख़्तरबाई फैज़ावादी का गाना सुन रहे थे, अब सहगल की एक ग़ज़ल सुनिए। बोल हैं—

आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक।

कौन जीता है तेरी जुल्फ़ के सर होने तक ॥

[रेकार्ड को चालू करके पिक-अप की सूई रेकार्ड पर रख देता है, रेकार्ड का फ़ेडर ऑन कर देता है। की (Key) दबाता है, लेकिन सहगल की ग़ज़ल के बदले मीरा बाई का भजन सुनायी देता है—मैं तो दर्द-दीवानी मेरा दर्द न जाने कोय।]

त्रिपाठी —(मिश्र से) यह आपने सहगल का रेकार्ड लगाया है ?

मिश्र—जो रेकार्ड आपने दिया, वही मैंने लगाया।

त्रिपाठी—पाल ने यही मुझे दिया था।

[पाल खट से दरवाज़ा खोलता है और आकर फ़ेडर ऑफ़ करता है। साथ दो आर्टिस्ट आते हैं।]

पाल —भाई आप क्या ग़ज़ब कर रहे हैं ! क्या आप लोगों का इरादा रेडियो की नौकरी को नमस्कार करके घर बैठने का है। एक तो सहगल के बदले मीरा बाई का भजन लगा दिया, फिर माइक का फेडर ऑफ़ नहीं किया, आपकी सब बकवास ब्रॉडकास्ट हो रही है।

त्रिपाठी—तुमने तो यही रेकार्ड मुझे दिया था।

पाल—मुझे कल्याणी यही दे गयी है। शायद लायब्रेरियन की ग़लती से यह ऊपर-नीचे रखा गया है।

मिश्र—(फिर फ़ेडर ऑन करके) क्षमा कीजिए, सहगल के बदले मीरा बाई का भजन प्रसारित किया जा रहा है। इसके बाद सहगल की

गज़ल ब्रॉडकास्ट होगी ।

(फ़ेडर ऑफ़ कर देता है ।)

पाल—(ज़ोर से ठहाका लगाता है) आज नाटक है न घपले, काश यह सब रेकार्ड करके नाटक में ब्रॉडकास्ट किया जा सकता ।

(बिमला देवी, प्राण, सुधीर, सुरेन्द्र आदि कलाकार आते हैं ।)

पाल—अब्बास कहाँ है ?

बिमला—जी अभी तो नहीं आया ।

पाल—क्या हो गया उसे ?

बिमला—उसकी माँ बीमार है, पर उसने कहा था कि ठीक वक्त पर आ जायगा ।

पाल—अगर वह न आया ?

प्राण—जी आप चिन्ता न करें । मैं आवाज़ बदलकर उसका पार्ट कर दूँगा ।

त्रिपाठी—देखिए पाल साहब, आज का दिन बदशगूनी से शुरू हुआ है । सम्भलकर काम कीजिए । अगर ए० एस० डी० साहब सुन रहे होंगे तो सफ़ाईयाँ देते-देते ज़बान घिस जायगी ।

प्राण—अरे भाई ऐसा हो ही जाता है । माइक या टर्न-टेबल मशीन सही, पर एनाउंसर या आर्टिस्ट तो मशीन नहीं । एक बार, बात लखनऊ की है, ड्यूटी-अफ़सर बीमार हो गया । पी० ए० छुट्टी पर था । विवश मुझे ड्यूटी-अफ़सर का काम भी देखना पड़ा । बरसात उस साल देर से हुई थी और बीमारी आम थी । रात कुछ बद-परहेज़ी भी हो गयी थी । नींद आयी न थी । जब मैं ड्यूटी आफ़िस में पहुँचा तो कुछ टेम्प्रेचर था । सिर बेहद दर्द कर रहा था । एक साहब का भाषण होने वाला था । जब एनाउंसमेंट हो गयी और भाषण होने लगा तो मैंने ड्यूटी आफ़िस का रेडियो बन्द कर दिया ! बाहें मेज़ पर फैला दीं और उनमें सिर देकर लेट गया ।

कुछ क्षण बाद फ़ोन की घंटी बजी। रिसीवर उठाया, ए० एस० डी० साहब थे। उन्होंने मेरा नाम पूछा। मैंने कहा, 'हुज़ूर बोल रहा हूँ।' हुज़ूर बोले, 'यह भाषण के बीच में तबला कैसा बज रहा है?' मैंने कहा, 'तबला तो कहीं नहीं बज रहा हुज़ूर, अभी देवता हूँ।' मैंने एक सेकिंड को रेडियो का स्विच धुमाया। वही साहब भाषण दे रहे थे—गहर-गम्भीर स्वर—यहाँ तो नहीं, लेकिन मेरे सिर में ज़रूर तबला बज रहा था। रेडियो का स्विच धुमाकर मैं फिर लेट गया। लेकिन दूसरे क्षण फिर फ़ोन आया। 'यह क्या बात है, कौन तबला बजा रहा है?' मैंने बड़े धैर्य के साथ कहा, 'हुज़ूर यहाँ कोई तबला नहीं बजा रहा, आप का रेडियो ख़राब होगा। आप उसे आज ही किसी मिस्त्री को दिखाइए।' उन्होंने फ़ोन बन्द किया तो मैं झुल्लाया हुआ अन्दर गया। क्या देखता हूँ कि वे साहब भाषण दे रहे हैं और पास ही फ़र्श के ग़ालीचे पर दीवार से पीठ लगाये बैठे हैं उस्ताद जगन्नाथ, जिन्हें उस भाषण के बाद ही तबला बजाना था। बेख़वाली में पास पड़े तबले पर उँगली मार देते हैं (हँसता है।) मैंने इशारे से उनको समझाया कि अपने वक्त पर ही तबले के जौहर दिखायें। बाहर आकर मैंने इतमीनान से ए० एस० डी० को फ़ोन किया कि हुज़ूर अभी तक आ रहा है तबला क्या? बोले नहीं, 'शायद मेरा रेडियो सेट ख़राब है।'।

(सब हँसते हैं।)

मिश्र—(ओठों पर उँगली रखकर लम्बी-सी 'शी—ी—ी—' करते हुए) ख़ामोश !

[की (Key) आन कर देता है। मीरा बाई के भजन की अन्तिम पंक्ति स्टेज पर गूँज उठती है। त्रिपाठी इतने में दूसरे टर्न-टेबल पर सहगल का रेकार्ड ठीक करके एनाउंसमेंट करने को तैयार

हो जाता है। ज्यों ही रेकार्ड खत्म होता है, वह सुई उठाता है और माइक का फेडर ऑन कर बोलता है :]

—अब सुनिए सहगल की गज़ल । बोल हैं—

आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक ।

कौन जीता है तेरी जुल्फ़ के सर होने तक ।।

[माइक का फ़ेडर ऑफ़ कर देता है, रेकार्ड पर सुई रखता है । रेकार्ड बजने लगता है । की (Key) दबाता है, लेकिन ७८ के बदले ३३ की स्पीड में फ़ेडर ऑन हो जाता है । अजीब-सी फटी-धिसी आवाज़ स्टेज पर गूँजने लगती है ।]

पाल—भई स्पीड गलत है । ७८ के बदले ३३ !

मिश्र—उफ़ोह ! (स्पीड ठीक करता है । रेकार्ड ठीक से बजने लगता है । क्षण भर बाद की (Key) ऑफ़ कर देता है, आवाज़ मद्धिम हो जाती है ।) क्या करूँ दिमाग़ सख़्त परेशान है । घर में बीबी की तबीयत अच्छी नहीं । उन्हें आज डाक्टर के ले जाना था । और डाक्टर के इतनी भीड़ रहती है कि जब भी जाओ, दो घंटे प्रतीक्षा करनी पड़ती है । इसलिए सुबह मैंने कल्याणी को फ़ोन किया था कि मैं साढ़े आठ तक पहुँचूँगा, तब तक आप एनाउंसमेंट कर दीजिएगा । घर से तो मैं सात ही बजे चला था । पैतालिस मिनट का रास्ता है । १५ मिनट पहले पहुँच जाता । लेकिन सरकार ने इधर जो थर्ड-क्लास के सीज़न-टिकट दे दिये हैं, उनका लाभ उठाकर जालन्धर से चार पंजाबी मित्र इस महा-तीर्थ के दर्शन कर, पुण्य लाभ करने चले आये हैं । जालन्धर से जब बदली हुई थी तो उन्हें दावत दे आया था । क्या मालूम था कि वो आने को यही दिन चुनेंगे । मैं अभी कपड़े बदल ही रहा था कि उन्होंने दरवाज़े पर धावा बोल दिया । कपड़े बदलकर मैं बाहर आया । नमस्कार कर और मिज़ाज पूछ मैंने कहा, 'मैं जल्दी में हूँ, समय

से स्टूडियो पहुँचना है। कल मिलेंगे।' बोले, 'नौकर से बिस्तर रखवा दो, फिर तुम शौक से जाओ।' मैंने कहा, 'यार कमरा तो मेरे पास एक ही है।' बोले, 'क्या डर है, कमरा छोड़ हम चारों एक बिस्तर में सो सकते हैं।' (विषाद और बेबसी से हँसता है।) एकदम फक्कड़ पंजाबी ! उस जल्दी में समझ न पाया, क्या करूँ। पंजाब के फक्कड़पने और यू० पी० की संकोचशीलता में क्या अंतर है, यह वो क्या समझे। लाचार नौकर से मैंने बिस्तर रिक्शा से उतारने को कहा और किचन में जाकर बीबी से कहा कि नौकर के हाथ कुछ नाश्ते को भिजवा दे और खुद रेडियो स्टेशन को भागा। एक तो योही देर हो गयी, दूसरे साइकिल ने धोखा दे दिया। देखो भाई पाल, अगर कल्याणी या कौल को बुलवा सको तो बड़ा अच्छा हो, मुझसे तो आज गलती पर गलती होती चली जायगी। बीबी मेरी बीमार है और वो चारों पंजाबी फक्कड़ वहाँ हुड़दंग मचाये होंगे।

पाल—कल्याणी साढ़े आठ बजे तक ही रह गयी, यही ग़नीमत है। आज-कल उसकी शामें वैसी ख़ाली नहीं रहतीं।

प्राण—कौल विभाजन से पहले का एक बड़ा दिलचस्प किस्सा सुना रहे थे पाल साहब। रात की तीसरी सभा ख़त्म होने से पहले रेकार्डों का प्रोग्राम हुआ करता था। उन दिनों प्रोग्राम असिस्टेंट ही चारी से ड्यूटी आफ़सर की ड्यूटी बजाया करते थे। आम तौर पर पी० ए० इंचार्ज चपरासी को रेकार्ड दे देता था और वही बजा देता था।

सुधीर—उन दिनों चपरासी इतने योग्य होते थे कि आज-कल पी० ए० भी नहीं होते।

पाल—इसे कहते हैं गोद में बैठकर दाढ़ी नोचना !

सुधीर—Present Company is always excluded पाल साहब !

You are an exception !

प्राण—लेकिन उस शाम जो चपरासी ड्यूटी पर था, वो नया-नया आया था। बत्तरा की ड्यूटी थी। जाने वह लगातार कई दिन से रात की ड्यूटी कर रहा था या सो न पाया था, खूब पिये हुए था या न जाने क्या बात थी, उसने चपरासी के नये होने का खयाल न किया, जितने रेकार्ड थे, उसे सौंपे, लॉग बुक में पहले ही से उनके बोल भरे, मेज़ पर बाहें फैलायीं और लेट गया। डी० जी० साहब उस शाम किसी काम की वजह से ऊपर अपने कमरे ही में बैठे थे। थककर उन्होंने लाऊड-स्पीकर ऑन किया। कुछ देर सुनते रहे, जब दूसरी और तीसरी बार वही रेकार्ड बजा और साथ में हल्के खर्राटों की भी आवाज़ आयी तो वो दनदनाते हुए नीचे पहुँचे। बत्तरा खर्राटे ले रहा था। माइक का फेडर ऑन था और चपरासी उसी रेकार्ड को बार-बार बजा रहा था।

(सब हँसते हैं ।)

बिमला—पटना में एक बार इससे भी दिलचस्प क्रिसा हुआ। 'नगर-स्वच्छता आन्दोलन का उद्घाटन करने के लिए स्वास्थ्य-मंत्री पधारे थे। उनके भाषण का रेकार्ड ओ० बी० में तैयार हो गया था। शाम को उसे प्रसारित होना था। जब एनाउंसर ने एनाउंसमेंट कर दी और रेकार्ड बजना शुरू हुआ तो जो पहला वाक्य प्रसारित हुआ, वह यह था—'मैं आभारी हूँ कि आप ने मेरी बातों को ध्यान से सुना। अच्छा अब आशा दीजिए !'

प्राण—रेकार्ड उल्टी ओर से लग गया होगा।

बिमला—नहीं एनाउंसर ने दूसरी डिस्क पहले बजा दी थी।

[सब हँसते हैं, मिश्र की (Key) ऑन करता है। सहगल की ग़ज़ल का अन्तिम शेर मंच पर गूँज उठता है। सब चुप हो जाते हैं।]

मिश्र—पाल साहब ज़रा स्टूडियो में देखिए कि मुश्ताकअली खां तैयार बैठे हैं या नहीं। मैं एनाउंसमेंट यहीं से करूँगा, आप उन्हें तैयार रहने को कह दीजिए। आप का नाटक नौ चालीस पर शुरू होगा। सो उनसे कह दीजिए कि ६ बज कर उन्तालिस मिनट पर सितार खत्म कर दें।

[पाज चला जाता है। खण भर के लिए निस्तब्धता छा जाती है। सहगल की गज़ल की अन्तिम पंक्ति मंच पर गूँजकर खामोश हो जाती है। मिश्र माइक पर एनाउंसमेंट करता है :]

मिश्र—यह ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद है। अभी आप मिले-जुले गानों के रेकार्ड सुन रहे थे। अब आप उस्ताद मुश्ताक-अली खां से सितार पर राग काफ़ी सुनिए।

[फ़ेडर ऑफ़ कर देता है। स्टूडियो की लाल बत्ती बुझ जाती है। चूँकि की (Key) ऑन है, इसलिए मंच पर सितार की आवाज़ आती है।]

प्राण—मिश्र जी की (Key) ऑफ़ कर दीजिए। हम ज़रा नाटक की रिहर्सल कर लें।

मिश्र—(की { Key) ऑफ़ करके मुख की लम्बी साँस लेकर उठता है।)
शुक्र है यह प्रोग्राम खत्म हुआ। लगता था कि आज एक भी रेकार्ड ठीक से न बजेगा, एक भी एनाउंसमेंट ठीक न होगी। भई मैं अभी घर चला जाऊँगा। नाटक की एनाउंसमेंट आप खुद कर लीजिएगा।

पाल—नहीं, वो आप ही को करनी पड़ेगी। मैं नर्वस हो जाता हूँ।

(मिश्र चला जाता है।)

—(आर्टिस्टों से) लो भाई आओ। जल्द-जल्द एक रोज़ रिहर्सल हो जाय 'घपले' की। कम-से-कम बिमला देवी और प्राण अपने-अपने पार्ट देख लें।

बिमला—लेकिन अब्बास तो आये नहीं ।

पाल—उसका पार्ट आवाज़ बदलकर सुधीर कर लेगा । फिर उसका पार्ट तो बाद में है । हो सकता है उस समय तक वह आ ही जाय !

[आर्टिस्ट अपने-अपने मसीदे लिये हुए बड़े माइक के गिर्द खिंच आते हैं ।]

—(घड़ी की ओर देखकर) पूरे मिनट पर शुरू करो !

(क्षण भर खामोशी)

—येस—स्टार्ट !

सुधीर—यह ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद है । अभी आप खान मुश्ताकअली खाँ से राग काफ़ी सुन रहे थे, अब एक हास्य-रस का रूपक 'घपले' सुनिए—इसे श्री कैलाश कँवल ने लिखा है और श्री योगेन्द्र पाल प्रस्तुत कर रहे हैं—घपले !

प्राण—बेतार के इस छोटे से यंत्र के पीछे, जो आपको दूर-दराज़ की ख़बरें, भाषण, वार्ताएँ और गाने सुनाता है, काम करने वाले हाड़-माँस के इंसान हैं । इंसान हैं और मशीने नहीं और यद्यपि वे माइकों, टर्न-टेबलों, ट्रांसमिटर्स और रेकार्ड भरने वाली मशीनों के साथ चौबीसों घड़ी काम करते हुए मशीनें बन जाते हैं, लेकिन इसके बावजूद वे इंसान हैं । उनके दिल और दिमाग हैं, जो केवल मशीनें नहीं । जब-जब चिन्ताएँ और परेशानियाँ इन इंसान-नुमा-मशीनों को घेरती हैं तो उनके दिल-दिमाग काम करना छोड़ देते हैं और घपले होते हैं । फिर मशीनों के बारे में भी आप जानते हैं कि वो चिगड़ जाती हैं, टूट जाती हैं या ऐन वक्त पर चलने से इन्कार कर देती हैं । उन्हें देखने के लिए इंजीनियर हैं, लेकिन वो भी इंसान हैं । 'घपले' में रेडियो के पीछे काम करने वाले इन्हीं इंसानों और मशीनों की बदहवासियों की कुछ भलकियाँ आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं । पहले हम आपको स्टूडियो २, याने उस

स्टूडियो में ले चलते हैं, जहाँ से भाषण प्रसारित होते हैं। पौने आठ बजने को हैं, प्रोग्राम असिस्टेंट इंचार्ज मसौदा लिये तैयार हैं, लेकिन जिन श्रीमती जी को भाषण प्रसारित करना है, वो अभी नहीं आयीं।

सुरेन्द्र—(एक आर्टिस्ट जो पी० ए० का रोल कर रहा है, घबराहट से) लेडी एनाउंसर को तैयार रखो। प्राणेश्वरी देवी अभी तक नहीं आयीं।

सुधीर—कल्याणी तो घर चली गयी।

सुरेन्द्र—तुम भागकर उन्हें बुला लाओ। बराबर ही मैं तो घर है उनका, मैंने चपरासी से कहा था, उस कमबख्त ने पता ही नहीं दिया।

लाल—(स्टूडियो कमिशनर) जी चपरासी कहता है, कल्याणी देवी घर पर नहीं हैं।

सुरेन्द्र—कार तो प्राणेश्वरी देवी को लेने वक्त पर गयी थी न ?

लाल—बिलकुल वक्त पर गयी थी। आध घंटा पहले उन्हें यहाँ होना चाहिए था।

सुरेन्द्र—आध घंटा नहीं, उन्हें एक घंटा पहले स्टूडियो में होना चाहिए था। इतनी देर से उन्होंने स्क्रिप्ट भेजा कि टाइमिंग नहीं हो सकी। मसौदे में कई आपत्ति-जनक बातें हैं। कट-छँटकर कुछ-का-कुछ बन गया है। बिना चार रिहर्सलें किये वो ठीक से ब्रॉडकास्ट नहीं कर सकती। पहली बार माइक के सामने आ रही हैं।

प्राण—(सुधीर से) आप पढ़ दीजिएगा।

सुधीर—स्त्री का भाषण स्त्री ही पढ़े तो अच्छा लगता है।

बिमला—(जो प्राणेश्वरी का पार्ट कर रही है, माइक से ज़रा दूर से) क्षमा कीजिएगा, मुझे देर हो गयी।

सुधीर—कार तो आपको वक्त से भेज दी गयी थी।

बिमला—लेकिन अन्वास तो आये नहीं ।

पाल—उसका पार्ट आवाज़ बदलकर सुधीर कर लेगा । फिर उसका पार्ट तो बाद में है । हो सकता है उस समय तक वह आ ही जाय !

[आर्टिस्ट अपने-अपने मसौदे लिये हुए बड़े माइक के गिर्द खिंच आते हैं ।]

—(घड़ी की ओर देखकर) पूरे मिनट पर शुरू करो !

(क्षण भर खामोशी)

—येस—स्टार्ट !

सुधीर—यह ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद है । अभी आप खान मुश्ताकअली खाँ से राग काफ़ी सुन रहे थे, अब एक हास्य-रस का रूपक 'घपले' सुनिए—इसे श्री कैलाश कँवल ने लिखा है और श्री योगेन्द्र पाल प्रस्तुत कर रहे हैं—घपले !

प्राण—बेतार के इस छोटे से यंत्र के पीछे, जो आपको दूर-दराज़ की ख़बरें, भाषण, वार्ताएँ और गाने सुनाता है, काम करने वाले हाड़-माँस के इंसान हैं । इंसान हैं और मशीने नहीं और यद्यपि वे माइकों, टर्न-टेबलों, ट्रांसमिटर्स और रेकार्ड भरने वाली मशीनों के साथ चौबीसों घड़ी काम करते हुए मशीनें बन जाते हैं, लेकिन इसके बावजूद वे इंसान हैं । उनके दिल और दिमाग हैं, जो केवल मशीनें नहीं । जब-जब चिन्ताएँ और परेशानियाँ इन इंसान-नुमा-मशीनों को घेरती हैं तो उनके दिल-दिमाग काम करना छोड़ देते हैं और घपले होते हैं । फिर मशीनों के बारे में भी आप जानते हैं कि वो चिगड़ जाती हैं, टूट जाती हैं या ऐन वक्त पर चलने से इन्कार कर देती हैं । उन्हें देखने के लिए इंजीनियर हैं, लेकिन वो भी इंसान हैं । 'घपले' में रेडियो के पीछे काम करने वाले इन्हीं इंसानों और मशीनों की बदहवासियों की कुछ भलकियाँ आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं । पहले हम आपको स्टूडियो २, याने उस

स्टूडियो में ले चलते हैं, जहाँ से भाषण प्रसारित होते हैं। पौने आठ बजने को हैं, प्रोग्राम असिस्टेंट इंचार्ज मसौदा लिये तैयार हैं, लेकिन जिन श्रीमती जी को भाषण प्रसारित करना है, वो अभी नहीं आयीं।

सुरेन्द्र—(एक आर्टिस्ट जो पी० ए० का रोल कर रहा है, घबराहट से) लेडी एनाउंसर को तैयार रखो। प्राणेश्वरी देवी अभी तक नहीं आयीं।

सुधीर—कल्याणी तो घर चली गयी।

सुरेन्द्र—तुम भागकर उन्हें बुला लाओ। बराबर ही मैं तो घर है उनका, मैंने चपरासी से कहा था, उस कमबख्त ने पता ही नहीं दिया।

लाल—(स्टूडियो कमिशनर) जी चपरासी कहता है, कल्याणी देवी घर पर नहीं हैं।

सुरेन्द्र—कार तो प्राणेश्वरी देवी को लेने वक्त पर गयी थी न ?

लाल—बिलकुल वक्त पर गयी थी। आध घंटा पहले उन्हें यहाँ होना चाहिए था।

सुरेन्द्र—आध घंटा नहीं, उन्हें एक घंटा पहले स्टूडियो में होना चाहिए था। इतनी देर से उन्होंने स्क्रिप्ट भेजा कि टाइमिंग नहीं हो सकी। मसौदे में कई आपत्ति-जनक बातें हैं। कट-छँटकर कुल्लू-का-कुल्लू बन गया है। बिना चार रिहर्सलें किये वो ठीक से ब्रॉडकास्ट नहीं कर सकतीं। पहली बार माइक के सामने आ रही हैं।

प्राण—(सुधीर से) आप पढ़ दीजिएगा।

सुधीर—स्त्री का भाषण स्त्री ही पढ़े तो अच्छा लगता है।

विमला—(जो प्राणेश्वरी का पार्ट कर रही है, माइक से ज़रा दूर से) चूमा कीजिएगा, मुझे देर हो गयी।

सुधीर—कार तो आपको वक्त से भेज दी गयी थी।

बिमला—रास्ते में खराब हो गयी ।

सुधीर—ज़ैर आइए, बैठिए । एक मिनट भाषण शुरू होने में रह गया है । मैं रिहर्सल और टाइमिंग करना चाहता था । आप पहली बार भाषण ब्रॉडकास्ट कर रही हैं ।

बिमला—आप चिन्ता न कीजिए । मैं हजारों औरतों में भाषण दे चुकी हूँ ।

सुरेन्द्र—औरतों की सभाओं में भाषण देने और माइक पर बोलने में अंतर है । देखिए यहाँ बैठिए । न बहुत आगे, न बहुत पीछे । यदि आवाज़ धीमी होगी तो मैं आपको ऐसे इशारा करूँगा, आप आगे हो जाइएगा । ऊँची हुई तो यो संकेत दूँगा, ज़रा पीछे हो जाइएगा । ख़ाँसिएगा या बोलिएगा नहीं । अभी वहाँ लाल बत्ती आयेगी । उसके आते ही भाषण शुरू कर दीजिएगा । और भाषण समाप्त होने के बाद जब तक लाल बत्ती बुझ नहीं जाती, चुप रहिएगा । भाषण का शीर्षक दूसरे स्टूडियो से एनाउंस होगा । आपको शीर्षक बोलने की ज़रूरत नहीं । लीजिए, तैयार रहिए !

बिमला—(ख़ाँसती है) मैं ज़रा पानी का घूँट पिऊँगी । कंठ कुछ सूख रहा है ।

प्राण—श्रीमती जी पानी पी रही होती हैं कि रेड-लाइट हो जाती है और वे घबरा जाती हैं ।

बिमला—(जोर से घूँट भरकर) यह पानी का गिलास रखिए !

सुधीर—(मुँह पर उँगली रखकर) शी—ी—ी !

बिमला—मेरे भाषण का शीर्षक है—‘सरकारी नौकरियों में नारियों का हिस्सा’ (ख़ाँसती है ।) माताओं, बहनो और बेटियों !

प्राण—देवी जी बिना इस बात का ख़याल किये कि यह आम सभा नहीं और उन्हें लिखे मसौदे के अलावा कुछ नहीं बोलना चाहिए, सभा के भाषण की तरह अपनी रेडियो वार्ता शुरू करती है ।

प्रोग्राम असिस्टेंट इंचार्ज कागज़ पर लिखकर उन्हें हिदायत देता है कि जो लिखा है वही पढ़िए ।

बिमला—(पढ़ती है ।) जो लिखा है, वही पढ़िए—वही तो पढ़ रही हूँ ।

प्राण—प्रोग्राम असिस्टेंट सिर पीट लेता है । देवी जी और भी घबरा जाती हैं ।

बिमला—बहनों और भाइयो ! क्योंकि मुझे आशा है कि मेरे सुनने वालों में भाई भी हैं । आज जब देश की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण स्त्रियाँ घर की चार दीवारी को छोड़कर दफ्तरों में जाने को विवश हुई हैं, यह देखना आवश्यक है... आवश्यक है कि पुरुषों की तुलना में उनकी स्थिति कैसी है । क्या उन्हें वही विशेषाधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हैं जो पुरुषों को । क्या किसी एक काम के लिए उन्हें उतना ही वेतन मिलता है, जितना पुरुषों को ? और... और क्या नौकरी करने वाली औरत को माँ बनने की पूरी...पूरी (झुंझुंझाकर) यह वाक्य किसने काटा है, क्यों काटा है ?

सुधीर—(धीरे से) सुविधा प्राप्त है ।

बिमला—सुविधा प्राप्त है...अभी किसी बड़े अफसर ने यह राय प्रकट की है कि दफ्तरों में काम करने वाली नारियों में कुंवारियों को बेहतर समझा जाय । मैं पूछती हूँ, यह कहाँ तक उचित है ? यह कहाँ का न्याय है कि... कि... (झुंझुंझाकर) यह सारा वाक्य किसने काट दिया ? मेरे भाषण का सत्यानास कर दिया ।

प्राण—और देवी जी अपनी घबराहट में यह भूल जाती हैं कि वे सभा में नहीं आकाश वाणी के स्टूडियो में माइक के सामने बोल रही हैं और जो कुछ वे कह रही हैं वह ब्रॉडकास्ट हो रहा है । मोटर के किसी ज़रा से पुर्ज़ के बिगड़ जाने और रिहर्सल टाइम से न होने

के कारण इस भाषण के श्रोताओं को कितनी कोझत हुई होगी, इसका आप अनुमान कर सकते हैं । आइए अब हम आपको ड्रामा के स्टूडियो में ले चलते हैं ।

पाल — (आगे बढ़कर) Wait...Wait !

[सब चुप हो जाते हैं । मिश्र चुपचाप आकर पैनिल पर बैठ जाता है ।]

पाल — बिमला जी, आप इस बात का खयाल रखिए कि आप पहली बार रेडियो स्टेशन आयी हैं । आप सोशल सभाओं में भाषण देने की आदी हैं और रेडियो पर कैसे भाषण ब्राँडकास्ट किया जाता है, यह आप नहीं जानती । एक भी रिहर्सल आपने नहीं की । आपको अपने भाषण में एक लीडरानी का-सा लहजा लाना चाहिए । ऐसा लगे कि वह भाषण देते-देते एड्रियाँ उठा लेती है । देखिए मैं करके दिखाता हूँ । (मसौदे से भाषण पढ़ता है ।) यह देखना आवश्यक है कि पुरुषों की तुलना में उनकी स्थिति कैसी है ? क्या उन्हें वही विशेषाधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हैं जो पुरुषों को ? क्या किसी काम के लिए उन्हें उतना ही वेतन मिलता है जितना पुरुषों को ? क्या नौकरी करने वाली नारी को माँ बनने को पूरी...पूरी... (फिर बिमला की ओर मुड़कर) कहने का मतलब यह है कि रेडियो-स्टेशन में माइक के सामने भाषण देने वाली इस महिला के लहजे में अन्तर है । इसके अतिरिक्त जब वह एड्रियाँ उठाने के अन्दाज़ में बोलती है तो मसौदे में काट-छाँट के कारण उसकी गति मन्द हो जाती है और वह झुँझला उठती है । यह उतार-चढ़ाव आपके स्वर में आना चाहिए ।

बिमला — जी मैं समझ गयी । तो क्या मैं फिर से पढ़ूँ ?

पाल — क्या हर्ज है । नाटक यहीं से शुरू होता है । पहली झलकी जम

जानी चाहिए । रेडियो से भाषण करने वाले की घबराहट के बाद नाटक करने वाले आर्टिस्ट और संगीतज्ञों की बदहवासियों की झलकियाँ प्रस्तुत होंगी । एक के बाद एक ऐसे आये कि नाटक का टेम्पो बढ़ता जाय । लेकिन आप शुरू के डायलॉग छोड़ दीजिए । बस भाषण पढ़िए !

प्राण—क्या मैं भी अपनी कम्पेयरिंग फिर से पढ़ूँ ?

पाल—नहीं, इसकी जरूरत नहीं !

बिमला—बहनो और भाइयो..... !

[लेकिन इसके बाद वह क्या कहती है, सुनायी नहीं देता । केवल हम उसकी एड्रियाँ उठती देखते हैं, क्योंकि एनाउंसर ने की (Key) ऑन कर दी है और हम सुरताकअली खाँ की सितार सुनते हैं, जो बड़े ज़ोरों से झाला ले रही है ।]

मिश्र—नाटक शुरू होने में केवल दो मिनट हैं । एनाउंसमेंट मैं यहीं से करूँगा । और शुरू के म्यूज़िक का रेकार्ड भी यहीं से बजेगा । जब मैं हाथ का इशारा करूँ, नाटक शुरू कर दीजिएगा ।

पाल—खैर बिमला जी, आप समझ तो गयी हैं ना ?

बिमला—जी हाँ !

पाल—अन्वास नहीं आया ।

सुधीर—आप चिन्ता न करें, मैं आवाज़ बदलकर उसका पार्ट कर लूँगा ।

पाल—तुमने निशान लगा लिये हैं न ? जहाँ-जहाँ उसका पार्ट है, निशान लगा लो ।

सुधीर—जी बहुत अच्छा !

[मसौदे पर जल्दी-जल्दी निशान लगाता है । कोई खॉसता है, कोई कोने में जाकर पानी पीता है । ज्यों-ज्यों सितार की गति तीव्र होती है, आर्टिस्ट तैयारी की व्यग्रता का शिकार होते जाते

हैं—वैसी गच्चा घोंटती-सी व्यग्रता जो स्टेज पर पर्दा उठने अथवा स्टूडियो में फ़िल्मक ऑन होने से पहले आर्टिस्टों को आ दबोचती है। सुधीर जल्दी-जल्दी निशान लगाता है; सुरेन्द्र कभी रुमाल निकालकर उससे ओठ पोंछता है, कभी चरमा साफ़ करता है, बिमला अपने गले में पड़ी कंठी के हुक को कभी ज़रा उधर करती है कभी ज़रा इधर। तभी लाल रोशनी होती है और मिश्र हाथ उठाकर सबको ख़ामोश रहने का संकेत करता है। आर्टिस्ट फिर बड़े माइक के पास आ जाते हैं।]

मिश्र—(फ़ेडर ऑन करके) अभी आप मुश्ताकअली खाँ से राग काफी सुन रहे थे। यह ऑल इंडिया रेडियो लखनऊ-इलाहाबाद है। अब श्री कैलाश कँवल का नाटक 'घपले' सुनिए, जिसे श्री पाल प्रस्तुत कर रहे हैं—घपले।

[माइक का फ़ेडर ऑफ़ करके, म्यूज़िक का रेकार्ड लगा देता है और कानों पर हैड-फ़ोन रख लेता है, कुछ क्षण स्टूडियो में रेकार्ड की आवाज़ आती है। फिर रेकार्ड का फ़ेडर धीरे-धीरे बन्द करके तथा की (Key) ऑफ़ करके इशारा करता है।]

प्राण—(बड़े माइक पर) बेतार के इस छोटे-से यन्त्र के पीछे जो आपको दूर-दराज की ख़बरें, भाषण, वार्ताएँ और गाने सुनाता है, काम करने वाले हाड़-माँस के इंसान हैं, इंसान हैं और मशीनें नहीं ! और यद्यपि माइकों, टर्न-टेबलों, ट्रान्समिटर्स और रेकार्ड भरने वाली मशीनों के साथ चौबीसों घड़ी काम करते हुए वे मशीनें बन जाते हैं, लेकिन इसके बावजूद वे इंसान हैं। उनके दिल और दिमाग़ हैं, जो केवल मशीनें नहीं ! जब-जब चिन्ताएँ और परेशानियाँ मशीन-नुमा इन इंसानों को घेरती हैं, उनके दिल-दिमाग़ काम करना छोड़ देते हैं और घपले होते हैं। फिर मशीनों के बारे में भी आप जानते हैं कि वो बिगड़ जाती हैं, टूट जाती हैं

या ऐन वक्त पर चलने से इन्कार कर देती हैं ।

[अचानक फ़्लिक ऑफ़ हो जाती है । दूसरे सय इंजीनियर दरवाज़े से प्रवेश करता है ।]

पाल—क्या हुआ ?

इंजीनियर—यह स्टूडियो ऑफ़ हो गया है । नम्बर—२ से कोई दूसरा प्रोग्राम कीजिए !

पाल—लाहौल-विला-कुव्वत ! जाओ मिश्र उधर से एनाउंस करो कि कल-पुज़ों की ख़राबी के कारण हम यह नाटक नहीं सुना पा रहे । आप सूरदास के भजन सुनिए ।

[मिश्र भागता हुआ निकल जाता है । उसी वक्त अब्बास प्रवेश करता है ।]

अब्बास —माफ़ कीजिए, मुझे ज़रा देर हो गयी ।

पाल—आपको माफ़ कर दिया ! आप शौक से तशरीफ़ ले जाइए ।

‘घपले’ अब तीन महीने बाद अगले शैड्यूल में ब्रॉडकास्ट होगा ।

(पर्दा सहसा गिरता है ।)

